यमालय से मुक्ति

[कहानी-संग्रह]

लेखक—
कपिलदेवसिंह 'परिहार' साहित्यरत्न

प्रथमावृत्ति] दिसम्बर, ५५ [मूल्य १।)

प्रकाशक
डा० परमात्मासिंह 'परिहार', होमियोपैथ
ग्राम तथा पत्रालय : सुखपुरा
(बलिया)

मुद्रक
नन्दप्रसादसिंह
श्री शंकर प्रिंटिंग प्रेस
देवरिया : उत्तर प्रदेश

अपने विचार

अखिल ब्रह्माण्ड के समस्त जड़-चेतन के गूढ़ रहस्यों के उद्घाटन का एक साधन, कहानी भी है। जड़-चेतनों में ज्ञानयुक्त होने से मानव को ही सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त है। अनादिकाल से मानव कहानियों को सुनता, सुनाता और लिखता चला आ रहा है, इसलिए नहीं कि ये मनोरंजन की सर्वोत्तम साधन रही हैं, अपितु इसलिए भी कि ये संसार-सागर से पार उतरने के निमित्त, जीवन-जलयान के पथ-प्रदर्शन का उच्चतम प्रकाश-स्तम्भ सिद्ध होती आई हैं।

प्रश्न उठता है, जब इतनी कहानियाँ कही, सुनी और लिखी जा चुकी हैं, तब मेरे ऐसे दुस्साहस, नहीं धृष्टतापूर्ण कदम उठाने का कारण ? उत्तर है, लगी से मजबूरी। कहा भी है, स्वभाव द्वितीय प्रकृति है। जब मन-रूपी केमेरा, चक्षु-रूपी लेन्स से, मर्म-स्पर्शी दृश्यों को हृदय रूपी प्लेट पर अंकित कर लेता है, तो अनायास स्वानुभूति-रूपी फोटो धवल पत्र पर उतरते चले जाते हैं।

जब जीवन कला है, तो कहानी भी है। परन्तु आधुनिक युग में कहानी-कला का रूप आवरित कर दिया गया है, कथानक, कथनोपकथन, चरित्र-चित्रण, शैली एवं उद्देश्य के पंचतत्वों से। आत्मा का आवरण भी छिति, जल, पावक, गगन, समीरा प्रभृति पंचतत्वों से बुना गया है और चरित्र-निर्माण की भी पंचआधार-शिलायें हैं, शब्द, रूप, रस, गंध एवं स्पर्श। अतः इन पंचमहाभूतों और आधार-शिलाओं को, कला के नाम पर, कहानी के पंचतत्वों में बाँधना प्रकृति, जीव और ईश्वर को बाँधने के तुल्य है। कला,

सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् है, जो बन्धन-विहीन है, क्योंकि बन्धन, मृत्यु है। अतः कहानीकार की आत्माभिव्यक्ति जो आत्मा पर शाश्वत प्रभाव छोड़े, वही वास्तविक कहानी है, कला है। प्रस्तुत कहानी-संग्रह स्वानुभूतियों का स्वतंत्र अभिव्यञ्जन-मात्र है, जिसकी सफलता जन-रुचि की अनुकूलता-प्राप्ति पर ही है।

—परिहार

—:o:—

कथानुक्रमणिका

यह दिन दिखाया !

'अजी सुनते हो', माया ने भ्रू चाप से कटाक्ष बाण छोड़ते अपने बिम्बाधरों को गतिमान किया।

कहो न, पूछने की क्या आवश्यकता है? क्या आज का तुम्हारा यह असाधारण पाक पटुत्व पुरस्कार विशेष चाहता है? महेश ने उत्तर दिया।

आज मैं ही बनाने को मिली हूं?

बनी हुई को कौन बना सकता है?

सीधे मुंह कभी नहीं बोलते. जी छोटा कर देते हो।

तब इस तैयारी का तात्पर्य मुझे भेंट चढ़ाना है।

नहीं जी, मुझे तो जाना है।

जाने वाले को कौन रोक सकता है।

तुम्हें भी चलना होगा, मुझे पहुँचाने।

कहां! तुम्हारे पितृ गृह! कदापि नहीं। तुमने देखा नहीं, वहां की अत्यधिक आत्मीयता कितनी कटुता मूलक सिद्ध हुई?

भ्रामक मस्तिष्क भ्रम में ही पड़ा रहता है। मैं नैहर नहीं, नहाने जाऊंगी।

फिर इसके लिये पुरुष की आवश्यकता? कहावत है, मर्द का खाना और औरत का नहाना, कोई देख नहीं पाता।

'लोग कह रहे हैं, रोज समाचार पत्रोंमें निकल रहा है, तीन फरवरी १९५४ को महान् पर्व लग रहा है। इस शुभ अवसर पर स्वर्ग की निसेनी त्रिवेनी में स्नान करूंगी।

स्त्रियों के लिये हर मास, सप्ताह, दिन तिथि नहीं प्रत्येक पल पर्व ही लगा रहता है।

पुरुषों के मनोरंजन के लिये चलचित्र, नाटक, नृत्य, वारुणी, वारांगना द्यूत सब उचित है, परन्तु स्त्रियों के त्योहार और पर्व जिसमें परिवार के प्रत्येक प्राणी का हित सन्निहित है, अनुचित है।

पहिले के लोग चौथेपन में ही तीर्थ यात्रा करते थे, वह भी पैदल तुम्हारा तो अभी गृहस्थाश्रम भी पूरा नहीं हो पाया पैदल की बात तो एक ओर रही।

तो मैं भी लकीर की फकीर बनूं? तुम्हारे पिता ने तो अंग्रेजी नहीं पढ़ी थी, तुम क्यों पढ़े?

तब तुम चली जाओ, मैं घर पर बच्चों की देख रेख करूंगा।

'मैं अकेले पुण्य कमाकर क्या करूंगी? तुम साथ स्नान करोगे तो अगले जन्म में भी तुम्हें ही पाऊंगी।

'ये पांच पांच बच्चे किसके मत्थे मढ़े जायेंगे?

हमारे बच्चे इस जीवन-लाभ से कैसे वंचित रहेंगे? मुन्ना दस महीने का है, इसे मैं गोद में ले लूंगी। नन्हें दो वर्ष का है, उसे तुम ले लेना। कनक, छोटे और बड़े बाबू तो अपने पैरों चलने वाले हैं, उनकी क्या फिक्र?

अभी जुमा जुमा आठ दिन हुये। यम द्वितीया के अवसर पर मथुरा तथा गोवर्धन की भयंकर भेड़ियाधसान का अनुभव प्राप्त करके आई हो।

क्या हुआ? मैं मर गई या तुम?

इतना शीघ्र विस्मरण कर गई।

क्या हाथरस वाली घटना की याद दिला रहे हो, जब गाड़ी बदलते समय निर्दय यात्रियों ने ट्रेन से तुम्हें ढकेल दिया

था और मेरी रक्षामें तुम गाड़ीके नीचे ... चे थे। छूटी ट्रेन से बेचारे गार्ड का दृष्टि तुम पर पड़ गई और मेरा सौभाग्य सिन्दूर पुंछने से बच गया।

नही जी वह नहां।

तब क्या गोबर्धन वाली दुर्घटना की ओर ध्यान आकर्षित कर रहे हो जब अनियंत्रित भीड़ ने मुझे सड़क की पटरी से रथों के नीचे ला पटका था और मेरी प्राण रक्षामें उस भयंकर वृषभ के प्रहार से तुम्हारे नेत्र बच गये थे। अरो कोनों पर अमिट चिन्ह प्राप्त करके।

उनसे मन नहीं भरा क्या? जीवन की विगत भूलें, भविष्य की मार्ग प्रदर्शिका होती हैं।

यह तीर्थ यात्रा का ही फल था कि तुम और तुम्हारी आंखें बच गईं।

अच्छा भई! तुम्हारे लिए बच्चों के साथ मैं भी मोक्ष का पासपोर्ट प्राप्त करने चलूंगा।

पति की इच्छा के विरुद्ध पत्नी ने बिस्तर, ओढ़ने तथा बर्त्तनों के अतिरिक्त ढाई मन खाद्य पदार्थों से भरा एक बोरा भ साथ में ले लिया। अपने ग्राम आनन्द धाम से इक्के द्वारा पूरा परिवार, दुगुना पारिश्रमिक देकर भ ...न स्टेशन पर आठ दिवस पहिले पहुंचा। यहां ठहरे अगणित नरमुण्डों को देख महेश के होश उड़ गये।

मै तो नही ही जाऊंगा, उसने इक्के पर से ही स्पष्ट किया।

कार्य्यारम्भ कर पीछे हटना का पुरुषता है।

जिसमें प्राण सकट हो, उससे ?

क्या स्टेशन के प्रांगण में प्रस्तुत प्रत्येक पुण्यार्थी आत्म हंता ही है ?

तब इन्हीं के साथ चली जाओ।

दूसरों के साथ जाने ही के लिये, मेरे हाथ पकड़े थे।

लोचन लोलसे लोर ढरकाते माया ने अन्तिम अस्त्र फेंका। मजबूर हो महेश महान यात्रा का टिकट कटाने चला। वह उसे ज्ञात हुआ कि विशूचिका का टीका लेने वालों को ही टिकट मिलेगा। वह लौटा और झुंझलाते पत्नी से बोला--

अब भी लौट चलो तो अच्छा है।

क्यों, क्या बात हो गई ?

टिकट उन्हीं को मिलता है, जो हैजे की सूई लिये हैं।

तो ले लिया जाय, वहां लोग ले रहे हैं।

माता का टीका लेकर घर नहीं छोड़ा जाता, पति ने धार्मिक प्रतिबन्ध लगाया।

लौटकर पूजा कर लूंगी।

अपनी मन वाली करने के लिये औरतें कोई न कोई बहाना ढूंढ लेती हैं और धर्म को भी ताक पर रख देती हैं।

परिस्थिति के अनुसार ही सब कुछ किया जाता है।

वहां हजारों की भीड़ है, हमलोगों को कौन पूछेगा ?

बैठे ही बैठे सब सुलभ करना चाहते हो।

तब तुम्हीं जाओ।

इसी बूते पर मर्द बने हो।

जला महेश चला। घंटों खोजने पूछने के बाद सैनिटरी इन्सपेक्टर का एक चपरासी मिला। उसकी मध्यस्थता से माता दाई के पवित्र टीके के निमित्त पांच रुपये भेंट चढ़ाने पर

दूसरे दिन टीका सब को लग गया। शाम तक सब के सब ज्वर से पीड़ित रहे। परन्तु प्रयाग प्रस्थान की प्रसन्नता ने इस दैहिक कष्ट पर विजय पाई। तीसरे दिन रेल अधिष्ठात्री के प्रथम मंदिर के प्रमुख प्रहरी पुलिस को पांच मुद्रायें पूजा चढ़ाने पर तीर्थ राज का टिकट प्रसाद मिला। प्रहरी, मन्दिर सम्बन्धित दो सेवकों (कुलियों) को दो रुपये पारिश्रमिक पर रेल में चढ़ाने के लिये, ठीक करके, रफू चक्कर हो गया।

तीर्थ राज जाने के लिये जितनी ट्रेनें आती बेतरह भरी होती। रेल के डब्बों के भीतर, बाहर, ऊपर, नीचे, आगे, पीछे, खिड़की, पटरी पर लदे यात्रियों द्वारा, मधुमक्खियों के छत्तो का दृश्य उपस्थित रहता था। देखते देखते पांचवा दिन व्यतीत हो गया और बीस स्पेशल ट्रेनें भृगुक्षेत्र स्टेशन से यात्रियों के कलेजे पर दाल दलते निकल गई, परन्तु कोई नहीं चढ़ पाया। असामयिक बूंदाबांदी तथा शीत की तीव्र लहर से बच्चों की तबियत खराब होने लगी। इन प्राकृतिक प्रकोपों के प्रतिबन्ध प्रस्तुत होने पर भी पत्नी तनिक भी विचलित नहीं हुई। पति ने पुनः वापस चलने को सलाह दी परन्तु वह, सिकता से सनेह प्राप्त करने की भांति पत्नी पर प्रभाव रहित रहा। माया को स्वर्ग की सीढ़ी समक्ष ही दृष्टि गोचर हो रही थी। वह परिवार सहित अबकी बार अनायास ऊपर चढ़ जाना चाहती थी। जिस परम लक्ष्य को ऋषि, मुनि, महात्मा जन्म जन्मान्तर की कठिन साधना एवं तपस्या द्वारा प्राप्त करने में असमर्थ रहे, उसे वह एक डुबकी में प्राप्त करना चाहती थी। ऐसा स्वर्णावसर वह क्यों खोये।

उसी दिन शाम को एक खाली स्पेशल ट्रेन हरिहर क्षेत्र से

यात्रियों को लाने [illegible] जाती हुई, इस स्टेशन पर पानी पीने को रुकी। [illegible] अनायास सम्मुख मूर्तिमान होते देख, यात्री उसे ग्रहण करने का लोभ संवरण न कर सके। वरदाताओं के मना करने पर भी भक्त गण घुस ही गये। जन रुचि की अवहेलना न की जा सकी। उनके समक्ष रेलवे हेडक्वार्टर को सर झुकाना पड़ा। महेश माया सहित ट्रेन पर आरूढ़ हुआ।

ट्रेन को वहीं से वापस होना पड़ा। वह तीर्थ यात्रियों को लेकर बढ़ी। तुलसी के शब्दों में, 'मज्जन फल देखिय तत्काला। काक होंहि पिक बकौ मराला।।' वाले ध्येय को धारण किये डब्बे के भीतर भेड़ों में अचार की भांति कसे, पवन, पानी, प्रकाश से वंचित यात्रियों को कष्ट नहीं प्रतीत होता था। परन्तु दबने से मुन्नो की सांस रुकने लगी। अन्य दो बच्चे तड़पने लगे। पांच घन्टे में तब तक ट्रेन गाधिपुरी स्टेशन पहुंची। वहां एकत्रित सहस्त्रों की भीड़ ने मधु-मक्खियों को छत्तों सरो डब्बों से सम्बन्ध विच्छेद कराने का लाठियों से निष्फल प्रयत्न किया। एक हूरा नरमुन्डों म झलकता माया के ललाट से सम्बन्ध स्थापित कर लिया सिन्दूर की अविरल धारा बह चली। दूसरा महेश क. कोख में लग कर उसके अर्द्धाङ्ग होने को सार्थक किया। मुंह से एक आह निकली और आंखे टंगने लग गई। कुछ छिटपुट हूरे बच्चों को भी लगे। वे बिलबिलाने लगे। पानी पानी रटते एक स्वर्गार्थी ने वहीं स्वर्गारोहण किया। बेचारा सबके सहारे टंगा था, जिसे वे जीवित समझते थे। एक गर्भिणी का असमय गर्भस्राव हो गया। उसके मुंह से एक चीख

निकली. परन्तु यह नक्कारखाने में हुई तूती की आवाज ही साबित हुई। पांचवे मिनट ने महेश को चेतनावस्था में देखा। वह अस्फुट स्वर में बोला—

माया अब भी लौटो, अभी तक कुछ नहीं बिगड़ा है।

तुम तो औरतों से भी गये गुजरे हो' लहू सर से पोंछते वह झल्लाई।

'मै जो हूं, वह हूं। परन्तु इन बच्चों पर तो रहम करो।

क्या घर लौटने से ही सब कुछ बन जायेगा।

ट्रेन में घुट घुट कर मरने से लौटना कहीं अच्छा है।

वहां भी एक दिन मरना ही है, तब यहीं सब साथ ही क्यों न मरें। धर्म कार्य में मरने से शुभगति प्राप्त होती है।

इस आत्महत्या से लोक परलोक दोनों बिगड़ेंगे।'

इतने में पांचों बच्चे एक साथ करुण क्रन्दन किये। माया के एक कठोर शासन ने इस सेना को तत्काल नियन्त्रित कर दिया। भूख, प्यास तथा प्रकृति के असह्य कष्टों को सहते यात्रियों की अवहेलना करते. स्पेशल ट्रेन १४ घण्टे की यात्रा ३८ घंटे में तै की। छत्ते रूपी डब्बों पर चिपकी कितनी मानव रूपी मधु मक्खियां लाठियों की सांघातिक चोट से मार्ग में ही सम्बन्ध विच्छिन्न करलें। कितनी वाराणसी के बड़ी लाइन के ठिगने पुल के नीचे पिसकर चटनी बन गईं। इन अलंघ्य बाधाओं एवं अगणित घटनाओं की ओर से अन्यमनस्क होते स्पेशल उल्लसित हृदय दारागंज पहुंचे और वहीं पर लगभग खाली होगई। शेष यात्री राम बाग उतरे। महेश भी सपरिवार यहीं उतरा। उसकी जान में जान आई। रेलवे अधिष्ठात्री के

द्वितीय मन्दिर के एक सेवक कुली ने दो रुपये दक्षिणा पाने पर ही पार लगाने का आश्वासन दिया। पण्डे रूपी टी० टी० ईज का जाल बिछा था। एक ने महेश को टोका।

टिकट ?

हाजिर है।

इन सामानों का ?

बुक नहीं करा पाया था।

तब तो तुम दण्ड के भागी होगे।

इतनी नजर न फेरिये। धर्म का काम सबकी सहायता से होता है।

दस रुपये किराये के होते हैं। अच्छा! कुछ आप सहें कुछ मैं।

यदि पुलिस ने टोका तब ?

हम सब एक ही मन्दिर के पुजारी हैं।

पांच रुपये पूजा चढ़ा कर रेल अधिष्ठात्री के अन्तिम मन्दिर से छुटकारा मिला। कुली सामान फेंक कर चलता बना बड़ी रक झक के बाद दो रिक्शेवालों ने दो रुपये पर कीटगंज ले जाने की कृपा की। स्टेशन यार्ड से बाहर होते ही चुङ्गी वालोंका सामना करना पड़ा-परन्तु एक मुद्राने उनकी बिगड़ी मुख मुद्रा पर प्रसन्नता की लहर दौड़ा दी। रिक्शा वाले हटो बचो का नारा लगाते, महेश के चचेरे भाई के दो कमरे वाले निवास स्थान पर पहुँचे। यहां पचासों अतिथि पुण्यार्थी पधार कर नारकीय दृश्य उपस्थित कर दिये थे। मजबूर हो महेश को अपने तीन लोटे वाले पुराने पारिवारिक पण्डे की शरण जाना पड़ा। वहां पण्डे ने उसे पहचाना तक नहीं, जगह देने

की कौन कहे ? महेश का हृदय बैठ गया। इस फौज को लेकर अब वह कहां जाय। इधर रिक्शे वाले किराये के लिये आसमान सर पर उठाये थे। महेश ने उनसे कहा, भाई ! अब तुम ही कहीं ठहरने की जगह बताओ ?

'अच्छा चलिये' कहते वे मेले की ओर ले चले। किले के मैदान में प्रदर्शिनी के बाड़ जाने से उन्होंने इन्कार कर दिया क्योंकि इसके आगे सवारियों का मेलेमें जाना निषेध था। बड़ी तू तू मैं मैं के बाद दो दो रुपये की जगह पाच पांच रुपये लेकर रिक्शे वालों ने उनका पिण्ड छोड़ा। सारा सामान दो कुलियों के हवाले करके उनके पोछे २ माया तथा महेश बच्चों के साथ उनका मार्ग अनुसरण करने लगे। बांध के शृंग पर पहुंचते ही चतुर्दिक से अपार जन समूह की एक लहर प्रखर गति से प्रवाहित हुई। कुली सामान सहित उसी में विलीन हो गये। भाग्यवश इस परिवार के प्राणी बिछुड़े नहीं, परन्तु उनके सामान सदैव के लिये उनका साथ छोड़ दिये।

इस आकस्मिक विपत्ति ने महेश को अधीर कर दिया।

'अब कैसे काम चलेगा ? उसने झल्लाते माया की भर्त्सना की।

'तुम पैसों को दांत से पकड़ते हो, 'पत्नी ने व्यङ्ग बाण छोड़ा।

'तुम्हारे ही कारण मुझे आज यह दिन देखना पड़ रहाहै।

'चूड़ियां पहन कर घर में बैठो। ' पचास रुपया फेंकते उसने सामान खरीदने को कहा।

जैसे तुम्हारे बाप ही की कमाई है। जिसे तुम इस तरह ताव से फेंक रही हो।

क्या पुरुष की कमाई में स्त्री का भाग नहीं होता ?

होता है, परन्तु हठ धर्म्मी के लिये नहीं, अपव्यय के लिये नहीं।

जिसे तुम हठ धर्म्मी और अपव्यय कहते हो, उसे मैं सद्धर्म और सुव्यय समझती हूं।

तुम्हारी बुद्धि से मेरा काम नहीं चलेगा।

'हे त्रिवेणी माता, सब के कल्याण के लिये ही मैं यह सत्कार्य कर रही हूं, परन्तु वह भी नहीं होने पा रहा है। यह कहते माया, अपने स्त्री सुलभ रूप में पनियारे नयनों से अश्रु बिन्दु ढरकाने लगी जो कपोल शृंगों से होते सन्नो पर अविरल गति से गिरने लगे। मां को रोते देख बच्चे भी अनुकरण करने लगे। महेश बुद्धू बन आवश्यक वस्तुयें क्रय करके शीघ्र लाया। रहने को कहीं स्थान नहीं मिला। फूस के झोपड़े महीनों पहिले भर गये थे। झूसी के मैदान में बालू पर ही समय बिताना पड़ा।

तुम तो मुझे ही कोस रहे थे, देखते हो कितना अच्छा प्रबन्ध है। माया ने रात्रि का भोजन करा चुकने के पश्चात् शांति भंग किया।

हां, यहां तो सब ठीक है।

ऐसा प्रबन्ध किसने किया ? रात में दिन सा हो गया है। जगह जगह पानी के नल, मूत्रालय, शौचालय और सड़कें हैं सर्वोपरि पुलिस का प्रबन्ध अति उत्तम है।

हमारी सरकार का ही किया सब कुछ है।

तीते के बाद ही मीठे का स्वाद मिलता है।

आज पहली फरवरी १९५४ है। आज रात भर, कल

पूरा दिन और रात कुशल से बीत जाय तब परसों कुम्भ का फल मिलेगा।

जो जैसा सोचता है, वह वैसा होता है।

अन्त अच्छा तो सब अच्छा।

बात चीत करते रात के दस बज गये। दिन के छिट फुट जलद-पटल पवन के सहयोग से एकत्र हो गये और रात्रि की भीषणता की अभिवृद्धि करने लगे। संध्या से हो रही गति-शील वायु इस समय तक पर्याप्त तीव्रता धारण कर ली थी। माया तथा महेश अपने हृदय के टुकड़ो के साथ खुले मैदान में पड़े, भगवान से पानी रोकने की प्रार्थना कर रहे थे। परन्तु तुषारपूर्ण वायु को असामयिक वर्षा ने योग देकर अर्द्ध रात्रि से कुछ पहिले से पुण्यार्थियों को दो घन्टे तक कसौटी पर कसा।

महेश मन ही मन कुढ़ रहा था परन्तु अपनी हठ धर्मिणी सहगामिनी के भौं पर बल न आते देख, उसके अन्तस्थल के उदगार बहिर्गत न हो पाते थे। बच्चे भी मां के दुर्गा रूप का स्मरण करते हुये सट्ट लगाये थे। दो घन्टे बाद पानी थमा परन्तु अस्थिभेदिनी वायु रात भर चलती रही। ये उपद्रव किसी आने वाली आपदा के द्योतक थे। सूर्योदय नव प्रभात लाया। गत रात्रि की सारी व्यथा प्राणी मात्र. माता द्वारा ताड़ित शिशु की भांति भूल गया। दिन ननना हो गया। माया सपरिवार दिन भर मेले का पर्यटन करती रही। इसके अतिरिक्त सबों ने भरद्वाज आश्रम, अक्षय वट महावीर जी आदि प्रसिद्ध स्थानों का दर्शन किया जहां पति की इच्छा के प्रतिकूल माया सैकड़ों रुपये, पंडो, पंडा.नो और

उनकी युवती पुत्रियों के पाकेट गर्म करने के निमित्त, दक्षिणा स्वरूप दे दिया। निशि पुनः एक जगह मूसी के मैदान ही में बिताई जाने लगी। सोते समय माया ने छेड़ा।

तुम्हीं नहीं न आते थे, देखा कितने साधु, सन्त, महात्मा तथा नागा आये हैं।

कुछ को छोड़ सब के सब ढोंगी तथा किराये के टट्टू हैं।

तुम्हें कहीं अच्छाई नजर नहीं आती। अच्छा तो पंडित जी और राजेन्द्र बाबू क्यों आये हैं ?

मेले के प्रबन्ध का निरीक्षण करने, परन्तु तुम अपना पहलू मजबूत करने के लिये अपने साथ इन्हें भी सानोगी।

ये कहा से और कैसे आये ?

दिल्ली से वायुयान द्वारा आये। यदि रेल से आते तो मैं इनकी वीरता बखानता।

तुम्हें रेल में जरा सा तकलीफ क्या हो गई, सारी रेल ही खराब हो गई।

जरा दम धरो, जले पर नमक न छिड़को।

त्रिवेणी स्वर्ग की निसेनी है। कल जब उस पार किले के सामने संगम पर गोता लगाओगे तो सारा कष्ट भूल जाओगे।

मैं तो उस पार हर्गिज नहीं जाऊंगा। इस पार ही से नाव द्वारा संगम पर नहा लिया जायेगा।

माहात्म्य तो उस पार का ही है। सब दिन सेये काशी। मुये की बेर मगह के वासी।

परन्तु पुलिस का प्रबन्ध, संगम पर पर्याप्त नहीं है। वे मन्त्रियों की रक्षा में जुटे हैं।

बहानेबाजी मत करो।

नागों को छूट दे दी गई है। वे खुदा से बड़े मान लिये गये हैं।

क्यों नही माने जांय। जिसने सब कुछ छोड़ा सब कुछ पाया।

अब तो तुमने हम लोगों को स्वर्ग के द्वार पर पहुँचा ही दिया है—कल तो उसके भीतर पहुँचा ही कर दम लोगी।

तुम्हारे किये तो कुछ नही होता।

अच्छा अब अपनी कैंची सी जबान बन्द करो। इसका श्रेय तुम्हारे ही सर।

पति पत्नी इस विशाल सिकता क्षेत्र में जो शारदीय कष्टों का परिवर्द्धन कर रहा था, सो गये। दूसरे दिन प्रातःकालीन कृत्यों से निवृत्त होते ही, पत्नी संगम चलने के लिये उकताने लगी।

कुछ जलपान करके चला जाय। पति ने कहा

मुंह जूठा करके नहाने से पुण्य नहीं मिलता।

जरा बच्चे ही कुछ खा लें।

कदापि नहीं।

अच्छा चलो—इस हठ धर्म्मी का फल तुम्हें जीवन पर्यन्त भोगना पड़ेगा।

भीड़ के सहारे सब बढ़ते, पुल पार हुये। संगम के संकरे स्थान के पास भीड़ रोक ली गई। माया भी सपरिवार नियति के साथ सब से आगे संगम के पास तक पहुँच गई। लगभग ६॥ बजे नागों का जुलूस निकल जानेके लिये यत्र तत्र स्नानार्थी रुक गये। स्त्रियों ने अपनी स्वाभाविक धर्मान्धता वस, यम दूतों के पास से बचने के लिये नागों को पद रज का पासपोर्ट

पाना चाहा। नागाओं ने इन्हें लाख मना किया, परन्तु वे नहीं मानी। अष्टावगुण विशिष्ट नारी वर्ग की संख्या लगभग साठ लाख की अपार भीड़ में, तीन चौथाई थी। इस जनतंत्र युग में जब इनकी उपेक्षा, महान राजनीतिक संस्थायें तक नहीं कर सकी, तो गिने चुने नागाओं की क्या हस्ती। नारी! जब तक तुम में धर्मान्धता है, भावुकता है, अकर्त्तव्यशीलता है, तब तक नर का कल्याण नहीं।

डराने के लिये नागाओं ने अपने हथियार भांजने शुरू कर दिये, परन्तु मानता कौन है? पुरुष समाज में यह नागा वर्ग भी नारियों से हठधर्मी की तुलना में किसी प्रकार कम नहीं है। एक नागा ने अपना चरण छूते समय एक स्त्री को छेड़ दिया। दूसरे ने एक दुधमुहें बच्चे की टांग पकड़ कर खड़े जन समूह में फेंक दिया। तीसरे के चिमटे की नोक पद रज लेने के लिये, झुकती हुई माया की आंख में घुस गई। वह हाथों से आंख ढक कर बैठ गई। मुन्ना हाथ से छूट कर गिर गया। महेश ने उठना चाहा, परन्तु एक नागा फेंक चुका था। महेश के झुकते ही नन्हें हाथ से जाता रहा, परन्तु वह माया को टाप की भांति छाप लिया। अन्य बच्चों को अब कौन पूछे? परन्तु वे भी मां की ढाल बन गये। फिर वह भगदड़ मची जो कल्पनातीत थी। इनके गिरने से अगणित गिरे जिनको कुचलते लाखों निकल गये। कितने भास में गिर गिर कर उसे भर दिये। नंगे, लूले, लंगड़े, अपाहिज भिखमंगे को सर्वदा के लिये अपने कष्टों से छुट्टी मिल गई। भगदड़ के बाद छूटे तथा गिरे सामानों को जिसने जहां पाया वहीं से हाथ मारा। बचे हुये सामानों के ढेर का पहाड़ लग गय

जिनमें जूतों, ओढनों, बिछौनों, बर्तनों का स्थान विशिष्ट था। अनेकों विकलांग हो गये और अगणित अनिच्छित परम ध्येय एवं धाम को प्राप्त हुये। एक ओर सहस्रों शवों की पंक्तियां पुलिस के घेरे में पड़ी थीं। किले में उस समय किसी दावत का आयोजन हो रहा था। बेचारों को इस भयानक दुर्घटना की खबर तक नहीं थी।

अपराह्न में—

जब माया को होश हुआ तो उसके अंग प्रत्यंग में असह्य वेदना हो रही थी। उसकी फूटी बायीं आंख पर पट्टी बंधी थी और टूटी दाहिनी टांग पर प्लास्टरों का बोझ लदा था। उसके चारों ओर सैकड़ों घायल चीख रहे थे। जिनमें किसी की आंख विकृत थी तो किसी का टांग और किसी का हाथ तो किसी की पसली और कमर। कोई भीषण हिचकियां ले रहा था और कोई अन्तिम सासें। कितने गिन रहे थे अपनी अन्तिम घड़ियां। माया ने भी होश में आते अपने करुण क्रन्दन से इस वीभत्सता में योग दिया। वह चिल्लाई महेश! मुन्ना! नन्हें! कनक! छोटे बाबू, बड़े बाबू, परन्तु वे सब तो उसको बचा कर उसकी पुकार के परे पहुँच गए थे। सात, दिनों तक वह मेला चिकित्सालय में विक्षिप्तावस्था में पड़ी रही। आठवें दिन उसे होश आना प्रारम्भ हो गया। होश में आते ही वह बड़बड़ाने लगी, हा दैव! मेरी हठधर्मी ने पति की आज्ञा का उल्लंघन करा कर आज मुझे यह दिन दिखाया।

पेशकार गुरु

'मेरा टी० ए० बिल बन गया ?' डिप्टी साहब ने अपने विश्राम कक्ष में पेशकार को बुला कर पूछा।

'जी हां', सेवा में प्रस्तुत करते गोपाल ने उत्तर दिया।

'मैंने तो जनता से यात्रा की थी परन्तु इसमें मेल से दिखलाई गई है ?'

'इसलिये कि यात्रा सम्बन्धी नियमों ने इसे करने को बाध्य किया।'

'नियम क्या कहते हैं ?'

'नियमानुसार आप द्वितीय श्रेणी में यात्रा करने के अधिकारी हैं जो जनता के अतिरिक्त अन्य यात्री ट्रेनों में ही होती है।'

'चाहे चलें या न चलें, लेलें ?'

'ऐसा सब करते हैं। फिर भी सेवक ने श्रीमान् का लाभ ही सोच कर किया है।'

'यदि कोई जान ले तब ?'

'वह कुछ नहीं कर सकता। आपका प्रमाण पत्र तो बिल पर अंकित रहेगा ही कि आपने द्वितीय श्रेणी में यात्रा की है। केवल लिख देने ही से काम चल जायेगा।'

'आप तो रोज ही मुकदमों का फैसला करते हैं। जो कागज में लिखा रहता है, उसे ही सही मानते हैं। वास्तविकता तो आप देखते नहीं ?'

'हां, ठीक है। परन्तु मुझे तो न्याय करना होता है, केवल कागजी सबूतों पर घूम घूम कर देखने के लिये विधान कहता

नहीं।'

'आप अपने ही को क्यों कहते हैं? सिविल सर्जन तो स्वस्थ को अस्वस्थ और रोगी को निरोगी केवल प्रमाण पत्र द्वारा ही कर देते हैं।'

'हां हां, उनको इतना अधिकार है परन्तु मैं क्यों असत्य लिखू?'

'आपका यह प्रथम अवसर है अतः भयभीत हो रहे हैं वरना यह तो हक की रकम है। निर्माण विभाग को ही लीजिए, अच्छे निर्माण कार्य को बुरा और बुरे को अच्छा, इंजीनियर का प्रमाण पत्र ही बतलाता है।'

'मैं आपकी राय से सहमत हूं। परन्तु यह देखा देखी पाप और पुण्य मैं क्यों करूं? कभी आप ही विरुद्ध हो जाय तब?'

'श्रीमान् मैं आपका सेवक हूं। आप ही के आंख मूंदने से मुझे चार पैसे रोजी के मिल जाते हैं। मेरे लिये ऐसे विचारों का मस्तिष्क में आने देना भी, गुनाह है।'

'आपकी सत्यनिष्ठा से मैं बहुत प्रसन्न हूं, परन्तु मेरा साहस नहीं हो रहा है।'

'आप तनिक न भयभीत हों, कागज का पेट भरा रहना चाहिये। कितने निरीक्षक तो घर बैठे ही निरीक्षण पुस्तिकाओं में निरीक्षण लिख कर गन्तव्य स्थान पर उपस्थित हो जाते हैं।

अच्छा रखिये, कल हस्ताक्षर करूंगा।'

'न्यायालय से लौटने पर उस दिन रात भर डिप्टी साहब को नींद नहीं आई। वह जनता से तृतीय श्रेणी में यात्रा किये थे, कैसे द्वितीय श्रेणी का किराया चार्ज करें? ऐसे ४२० के

मुकदमों का वह रोज ही फैसला करते हैं। उसमें मुलजिमों को काफी सजा देते हैं। फिर वही जुर्म अपने आप करें ? इसी उधेड़ बुन में वह बिस्तरे पर पड़े करवटें बदलते रहे कि बाल रवि की प्रथम कोमल रश्मियों ने, बन्द खिड़की की किवाड़ों के शीशों से, घुस कर उनको जगाया। 'अरे ! सुबह हो गई ?' यह कहते वह उठे और शीघ्र ही नित्य कर्म से निवृत्त हो श्री बागची सिटी मजिस्ट्रेट के यहां गये जो प्रथम श्रेणी में यात्रा करने के अधिकारी थे। वह अपने ड्राइंग रूप में बैठे चाय की इन्तजार करते अखबार देख रहे थे।'

शेखर के पहुंचते ही, वह उठकर बड़े तपाक से हाथ मिलाये और बगल में रखी कुर्सी पर बिठा दिये। शेखर के मस्तिष्क में टी० ए० मानस रोग की भांति घर कर गया था। वह बैठते ही पूछा,

'क्या आपने अपना टी० ए० ड्रा कर लिया ?'

'इसमें कौन सी नई बात है ? यह तो बराबर ही किया जाता है।'

'लखनऊ का भी जहां हम सभी आयोग के समक्ष गवाही देने के लिये बुलाये गये थे।'

'हां हां उसका भी। क्या बिल बनाने में तुम्हें कोई अड़चन महसूस हो रही है ?'

'हां, यदि आपकी आफिस कापी यहां हो तो एक बार मैं भी देख लूं।'

'बागची ने तुरन्त निकाल कर दे दी।'

'हम लोग तो साथ ही जनता से गये थे।'

'हां तो बात क्या हो गई ?'

'परन्तु इसमें तो मेल से जाना दिखलाया गया है। वह भी प्रथम श्रेणी में।'

'मैं प्रथम श्रेणी का अधिकारी हूं जो जनता में नहीं मेल में ही होती है।'

'वहां एक ही दिन ठहरा गया था परन्तु दैनिक भत्ता दो दिनों का अंकित है।'

'हां ठीक है, परन्तु आफिस ने दो दिनों की उपस्थिति का प्रमाण पत्र दे ही दिया है।'

'क्या ऐसा करना जुर्म नहीं है ?'

'अवश्य है, परन्तु ऊपर से नीचे तक सब इस रोग में जकड़े हुये हैं और सर्व मान्य गुनाह भी प्रचलन होजाता है।'

'यदि कोई ४२० का मुकदमा चलादे तब ?'

'मुकदमे में सुबूत की आवश्यकता होती है।'

'छोटे स्टेशनों से बड़े स्टेशनों और बड़े से छोटे स्टेशनों का प्रथम या द्वितीय श्रेणी का टिकट नहीं के बराबरही बिकता है, सुबूत इससे बढ़ कर क्या हो सकता है ?'

'तुम छोकरे हो, अभी विश्वविद्यालय से ताजे निकल कर आये हो। यदि टिकट नम्बर देना होता तो अवश्यही इसकी पकड़ थी-परन्तु नियम-निर्माणकर्त्ताओं ने इस प्रतिबन्ध को जान बूझकर छोड़ दिया है।'

'हां इससे जरुर कुछ बचत है।'

'तुम्हारा पेशकार गोपाल तो निहायत चलते पुर्जे पेशकारों में से है। क्या उसने तुम को कुछ नहीं बतलाया ? जितनाही वह आफिस कार्यों में दक्ष है उतना ही कागजी कार्यवाही में सिद्धहस्त।'

क्या उसके भाग्य का आप क अनुभव है ?

हां, हमारे पशी में वह एक वर्ष रहा, उसी ने मुझे से कार्यों की दीक्षा दी।

'उसे मैं अब तक धूर्त समझ था।' जो ज्यादा फूंक फूंक कर चलता है, वही चिपड़ता है गोपाल तो पूर्ण स्वामी भक्त है।

'हां, जब मैं पहले पहल यहां आया तो वह स्टेशन पर मेरे बिना लिखे ही मोटर लेकर उपस्थित था।'

'निवास स्थान ले करके उसमें पलग तथा फर्नीचर भी लगवा दिये होगा।'

'उसने सब कुछ कर रखा था। यही नहीं अब तो महीने में चार छः दावतें भी देता है। अंडे सब्जी और जलावन की कमी महसूस नहीं होने देता।

'बड़ा ही शरीफ है। अफसरों की खातिरदारी कोई उससे सीखे।'

'मैं चीजों के पैसे भिजवाता हूं परन्तु वह लौटा देता है। यदि कभी उसके यहां दावत में शरीक होने में विलम्ब हुआ, तो वह तुरन्त अपनी पुत्रियों द्वारा बुला भेजता है।'

'अजी ये तो उसके साधारण गुण हैं। हाकिमों के लिये फैसले लिख देना उसके बायें हाथ का खेल है और हस्ताक्षर करने के अतिरिक्त, उनको अन्य कार्य न करने देना, उसकी विशेषता।'

'मैं क्या जानता था कि वह इतना कुशल है। अब तो मैं भी इस क्लरिकल ड्यूटी से अपनी जान छुड़ाऊंगा ?'

'शेखर ज्योंहि चलने को उद्यत हुआ चाय हाजिर थी। उसे भी फर्ज अदाई करनी पड़ी। परन्तु चाय को गरम गरम

मित्र के साथ उसका मन नहीं था। जीवन के कठोर कर्त्तव्य का चुनौती का उसका प्रथमावसर था। नाना प्रकार के संदेह उसे खाये जा रहे थे। कहने को श्री बागची की बातों पर वह विश्वास कर गया, परन्तु दिल गवाही नहीं दे रहा था। गरम चाय ने, अपनी अवहेलना होने से, उसकी जीभ जला दी। वह आधी चाय छोड़ कर भगे भगे एस-पी के यहां गया। उसके पहुंचते ही समय सूचक यंत्रने ६ बार टन टन की अवाज की। श्री आपटे फाइलों से उलझे, अपने बंगले के आफिस में मेज के समक्ष कुर्सी पर स्थित थे। शेखर ने पहुंचते ही प्रश्न किया,

'क्या आपने अपना यात्रा व्यय निकाल लिया ?'

'यह तो हम लोगों का दैनिक एव नियमित कार्य्य है। क्या तुमको कोई दिक्कत पड़ रही है ?'

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। परन्तु उस दिन आपने लखनऊ यात्रा का किस श्रेणी का किराया लिया है ?'

'प्रथम श्रेणी का,'

'परन्तु हम सब लोग तो जनता से साथ ही गये थे।'

'क्या तुम्हारा यह पहला मौका है ?'

'जी हां',

'इसी लिये इतना उधेड़ बुन कर रहे हो वरना भयभीत होने का कोई कारण नहीं। तुम्हारा प्रमाण पत्र पर्याप्त हो गया।'

'शेखर को सन्देह हुआ कदाचित ये लोग उसे धोखा दे रहे हैं ? उसका भय मानसिक उन्माद का रूप धारण कर लिया था जो उसे; उसके अंतरंग मित्र जनपदीय प्रधाना चिकित्सक तथा इजीनियर के यहां खींच ले गया। उनके यहां भ उसने

यही मूर्खतापूर्ण प्रश्न किया और उनके हंसी का कारण बना।

मानवीय दुर्बलता कोई आधार ढूंडती है वह उसे ज्योंही मिली कि वेल की भांति ऊपर चढ़ने और फैलने लगती है।

शेखर ने मनही मन पेशकार के रूप में अपना एक मार्ग प्रदर्शक एवं परम हित चिन्तक पाया। दूसरे दिन उसने टी० ए० बिल पर हस्ताक्षर करके भेजा लिया। नवल वधू की भांति उसकी पहिली हिचक मिट गई जो जीवन सहचर की चिर संगिनी के रूप में अपरिवर्तित रहा। पेशकार द्वारा वे अपनी सब आवश्यकतायें पूरी कराने लगे; और साथ ही फैसला भी लिखाने लगे। फिर क्या था रहबर उस्ताद बन बैठा।

एक दिन एक क्षेत्रीय एमेले जिनको एक सबइन्सपेक्टर पुलिस ने एक डकैती और खून के मामले में आपसी सौदा न पटने पर दुत्कार दिया था, शेखर से मिलने आये। और बातों के क्रम में अपना परिचय प्रगाढ करने के निमित्त पूछे,

'आप तो उसदिन लखनऊ गये थे ?'

'जी हां,' डिप्टी साहब, शरद् ऋतु होने पर भी, पसीने से सराबोर हो गये। वह डरे की कि वह कहीं टी० ए० वाला प्रश्न न उठा देवे। परन्तु जी कड़ा करते दुहराये,

'आप भी तो मुझसे मिले थे आयोग के समक्ष गवाही देते समय।'

एमेले की हुलिया बिगड़ गई वह डरे कि उनके डबल टी० ए० लेने का भेद कहीं डिप्टी साहब तो न जान गये क्योंकि वह सहकारी बिभाग के किसी अन्य कार्य्य से सरकार की ओर से

आयोग के सम्मुख गवाही देने, उसी दिन लखनऊ गये थे और अपना उस दिन का टी० ए० राज तथा विभाग दोनों से लिये थे। प्रसंग बदलते उन्होंने उनकी भावनाओं का कोमल स्पर्श करते उत्तर दिया,

'जी हां, आपकी तो बड़ शानदार गवाही हुई थी।' डिप्टी साहब के जान में जान आई वह बोले,

'मैं तो अभी नौ सिखुआ हूं। आप कैसे तकलीफ किये ?' लोहे को गरम जान एमेले ने हथौड़ा मारा'

'आपके परगने में खूनों और डकैतियों की भरमार हो गई है।'

'पुलिस तो बड़ी मुस्तैदी से काम कर रही है।'

'परन्तु आपकी बड़ी बदनामी हो रही है।'

'हो सकता है, पिता पुत्र की घुड़सवारी के समान सब सबको खुश नहीं कर सकते ?'

'जनता ने सभाकरके आपकी आम शिकायत की है, और मुझसे एसेम्बली में प्रश्न करने को वाध्य कियाहै,'

'क्यों मेरा इससे क्या सम्बन्ध है ?'

'क्योंकि पुलिस निरपराधियों को फंसाकर आपसे सजा दला रही है। और आप उन्हें प्रोत्साहन देकर आम जनता को परेशान कर रहें हैं।'

'ऐसा मैं हर्गिज नहीं करता-मैं चैलेंज देता हूं।'

जनतंत्र में प्रजा की अवहेलना नहीं की जा सकती ? मैं जा रहा हूं। अब तो मुझे मजबूर होकर प्रश्न करना ही पड़ेगा। उठने का उपक्रम करते, एमेले ने रोब जमाया। इस बन्दर

घुड़की पर डिप्टी साहब के होश फाख्ता हो गये।'

'मैं कैसे अपने को निर्दोष सिद्ध करूं'?'

'आपको पूर्ण रूपेण ज्ञात है कि हम लोगों की राय से ही शासन विधान बनाया जाता है।'

'जी हां आप सरकार और विधान दोनों के स्रष्टा हैं।'

'अब से पुलिस के मुकद्दमों को मुझसे पूछकर फैसला किया कीजिये क्योंकि मुझे क्षेत्र के प्रत्येक पत्ते की खड़क का ता रहता है।'

'अब से ऐसा ही होगा। इस समय मेरे योग्य सेवा।'

'हां जी-मुझे तो विस्मरण हो गया था। कुबेरपुर के डकैती और खून वाले मामले में मुन्दर जी को जो कई जन प्रिय संस्थाओं के अध्यक्ष एवं मंत्री हैं, दरोगा जी ने झूठ मूठ फंसा दिया है उन्हें बरी कर दीजिये।'

'अच्छा पेशकार साहब से भी कह दीजिये। पेशकार का नाम सुनते ही एमे ले की रूह फना हो गई क्योंकि ये दोनों एक ही स्कूल के विद्यार्थी थे। उन्होंने कहा,

'आप टाल मटोल कर रहे हैं।'

'अपने शुभेच्छु के प्रति ऐसे विचार का स्वागत करना महान अकृतज्ञता होगी।'

'तब आप एक पर्चा दे दीजिये। एमेले डिप्टी साहब का पर्चा लेकर ९ बजे पेशकार साहब से उनके घर पर ही मिले। पेशकार कचहरी जाने के लिये इजलास के कागजों का बस्ता बांध रहे थे। इक्का दरवाजे पर खड़ा था। बस्ता लेकर उनका नौकर जो चपरासी था, ज्यों ही इक्के पर रक्खा कि एमेले पहुंचे। पेशकार ने देखते ही पूछा,'

"आप तो दूज के चाँद हो गये हैं!"

'क्या कहूं भाई, एमेले क्या हुआ सब पर अजाब आ गया। न खाने की फुरसत न सोने की। जनता के सुख दुख की जैसे मेरे नाम ठेका हो गया है।

'अब तो आपकी पांचों अंगुलियां घी में हैं। सेवा परम धर्म है।

'अजी छोड़ो इन सब बात को। अभी अभी डिप्टी साहब के यहां से आ रहा हूं। उनका पर्चा देते वह बोले,

'कुबेरपुर वाले मुकदमें से सुन्दर को बरी कर देना है।'

'वह तो कई बार का सजा याफ्ता है, डिप्टी साहब नये हैं वह क्या जानें ?'

'एमेले ने दस रुपये के नोट रुपी खपरे से पेशकार का मुंह बन्द करना चाहा।'

'सिंह के भाग हड़प कर मुझे यही पढ़ाने चले हैं ?'

'मैंने बराबर आपके पाकेटों को प्रसन्न किया है।'

'अपने से नहीं दूसरों की खाली करके। याद है न ब्लेक मार्केटिंग वाला मामला कितना बेढब था। बागची साहब के जमाने में मैंने किस खूबी से निबाहा था—परन्तु खेत से रसरी हटते ही, दीवान को अपने फूटी आंखों नहीं देखा।

'आपकी मुट्ठियां गर्म किया था मुझे भली भांति याद है।'

'केवल ओस चटा कर प्यास बुझायी थी। कितना गिनाऊं कर्जी परमिट वाला केस कितना संगीन था राय साहब एस० डी० ओ० के जमाने में ? कान कराकर अपने अंगूठा दिखला दिया था।'

'इतना अकृतज्ञ न होइये आर को भी दिखलाया था।

'हजारों पर हाथ साफ करके कमाया था। काठ की हांडी दूसरी बार नहीं चढ़ती।'

'अब मैं एमेले हो गया हूं। जरा मेरे पोजीशन का भी ख्याल कीजिये।'

'आप पहिले भी तो अन्य संस्थाओं के प्रधान थे। अब तो आपका भाव और बढ़ गया है।'

'क्या एक बार भी माफी नहीं होगी?'

'आप तो स्वयं फैसला करके आते हैं, अब यहां भी वही लागू कीजिये। ठठेरे ठठेरे बदली अभी नहीं होती।'

'आप डिप्टी साहब की दलाली कर रहे हैं।'

'जैसे समझिये।'

'फिर कितना चाहिये?'

'आपने कितना लिया है।'

'जो भी, आपको क्या भेंट करू ?

'चार सौ'

अच्छा आठ बजे रात में आज सेवामें उपस्थित हूंगा। गये तो सीधे डी० एम के यहां गये क्योंकि भ्रष्टाचार निरोधक समिति के सदस्य भी थे। पहुँचते ही उनसे बोले कि आज मैं रंगे हाथों एक केस पकड़ाऊंगा। डी० एम ने सब प्रबन्ध अपने स्टेनो द्वारा कर दिया। पुलिस को खबर दे ही गयी। परन्तु स्टेनो, गोपाल का स्वजातीय था। जाति ने कर्त्तव्य पर विजय प्राप्त कर ली। उसने आकर गोपाल को सावधान कर दिया। पेशकार सचेत हो गया। एमेले से मिला तक नहीं एमेले का मनोरथ रावण के बाण की भांति विफल हो गया।

पेशकार कच्ची गोलियां नहीं खेले था। दूसरे दिन वह फैसला लिख कर डिप्टी साहब के हस्ताक्षर निमित्त पेश किया शेखर ने एक बार आद्यत फैसले पर दृष्टिपात किया। उसमें सुन्दर को मुख्य अभियुक्त करार देकर मुकदमें को दौरा सुपुर्द

कर दिया था। फैसले पर हस्ताक्षर करते समय डिप्टी साहब की दशा सांप छुछून्दर की हो गई। यदि सांप उसे निगलता है तो मर जाता है और उगलता है तो अंधा हो जाता है। फिर भी दिल को तसल्ली देने के लिये उन्होंने पेशकार से पूछा

'आपने सुन्दर को क्यों नहीं बरी कर दिया ?'

'कैसे करता ? उसके खिलाफ सैकड़ों सबूत हैं। नम्बर दस का सजा याफ्ता भी है।'

'एमेले ने तो कहा था, वह कई संस्थाओं का अध्यक्ष, मंत्री एवं कर्मठ सदस्य है।

'तो एमेले के बारे में ही आप क्या जानते हैं ?'

'वह गैंग वालों को प्रोत्साहन देते हैं, बन्दूकें देकर, जमानत कर के, परमिट तथा लाइसेंन्स दिला कर।

'क्या सबूत है !

'मेरे सहपाठी हैं। विद्यार्थी जीवन का स्वभाव उनमें द्वितीय प्रकृति का रूप धारण कर लिये है।'

'मेरा साहस नहीं करता कि मैं हस्ताक्षर करू।'

'आप कागजी सबूतों के खिलाफ कैसे दे सकते हैं ? विधान के प्रतिकूल कैसे जा सकते हैं। ऊपरी न्यायालयों की दृष्टि में अपनी अयोग्यता क्यों सिद्ध होने देंगे ?

'मनुष्य की छोटी से छोटी कमजोरी उसे कर्त्तव्यच्युत कर देती है। जब वह एक बार गिर जाता है तो बराबर गिरता ही जाता है। भय बुद्धि भ्रष्ट कर देता है। पेशकार की उपस्थिति से एमेले इस समय डिप्टी साहब की दृष्टि एवं मस्तिष्क से ओझल हो गये। उन्होंने फैसले पर हस्ताक्षर कर दिया जो उसी दिन न्यायालय में सुना दिया गया। एमेले को गहरी ठेस पहुंची। वह क्रोध के वशीभूत दूसरे दिन

डिप्टी साहब के यहां पहुंचे। डिप्टी साहब की आंखें नीची हो गईं। उन्हें ऊपर उठाने का साहस नहीं हो रहा था।

'आपने तो मेरी लुटिया डुबो दी" एमेलो ने शान्ति भंग की।'

'विधान ने मेरे हाथ बांध दिये।'

'इससे मेरा ही नहीं, जनतंत्र का अपमान हुआ।

'परन्तु सुन्दर तो दसबार का सजा याफ्ता था-पेशकार ने लिखित सबूत पेश कर दिया था।

'तो आपके गुरु पेशकार साहब हैं।" तभी आप डूब डूब कर पानी पीते हैं।'

'मतलब ?'

'साफ है। आप पेशकार के जरिये फैसला लिखाते और लेते हैं।'

'आप अपने ही चश्मे से सबको देखते हैं।'

'आप मजाक बना लिये हैं ? मैं अभी समझता हूं। हाथ कंगन आरसी क्या ? उसी मूड में वह पेशकार के यहां पहुंचे और उसे देखते ही जलकर खाक हो गये।

'आपने अच्छा नहीं किया ?'

'परन्तु आपने तो बहुत ही अच्छा किया था ? यदि एक भाई की कृपा न हुई होती तो आज मैं कृष्ण जन्मस्थान में होता।

'सिधरी चाल करती है, रेहू के सर बिलता है।'

'फिर आप भी बकरे की मां की तरह कबतक खैर मनाइयेगा।'

'बड़ों से रार ठानने का मजा चखोगे। तुम्हारा घड़ा भर गया है।

'जब ओखली में सर पड़ गया है तो मूसलों का क्या डर।

'उस्ताद अपने साथ अपने चेले को भी ले डूबोगे।'

'ईंट का जवाब पत्थर से भी मिलेगा। आपके नस नस से मैं वाकिफ हूं।'

'आग में घी न डालो। छठी का दूध याद न दिला दिया तो एमेल नहीं।''

'यह कहते आग बबुला हुये वह लौटे। कोयों में धसी आखें उनके कृष्ण मुख मण्डल पर अंगार की भांति हो रही थी। मार्ग में कार से टक्कर खाते खाते बचे। इक्के वाले से अन्धे की उपाधि पाये। एवं गाड़ी के बैल ने सींगों से उन्हें एक हटाते, अपना रास्ता साफ किया। वह लड़खड़ाते गिरते गिरते बचे। ध्यान विकृत होते ही, मस्तिक फंसाने की चाल सोचने लगा। पेशकार, वार से बच गया था। वह चोट खाये सर्प की भांति भयानक था। इस बार एक ही ढेले से वह दो चिड़ियों को मारना चाहते थे। उन्हें पता लगा कि ट्रेजरी आफिसर से डिप्टी साहब के मरासिम अच्छे नहीं हैं दोनों, प्रसिद्ध नर्तकी विल्वो के निमित्त, एक नाद दो भैंस की कहावत चरितार्थ कर रहे थे। वह सीधे ट्रेजरी आफिसर के यहां गये।

'आज आप इधर कैसे भूल पड़े ? अभिवादन करते ट्रेजरी आफिसर ने पूछा।'

'आपके मार्ग का कंटक साफ करने।'

'आप तो मजाक कर रहे हैं। मेरे रास्ते का कौन खार है ?'

'शेखर— जो आपको, अधिकारी वर्ग में, इशरतगंज का नियमित पथिक सिद्ध करता फिरता है। और इस प्रकार आपकी जड़ में नमक डाल रहा है।

'ट्रेजरी आफिसर के भय से रोयें खड़े हो गये। मुखाकृति पर भविष्य की आशंका में कितनी रेखायें बनी और बिगड़ी

फिर भी वह धैर्य धारण किये बोले

'आपको कैसे मालूम ?'

'मेरा तो यही काम ही है। चारों ओर कान खुले रखता हूं।'

'आपके कष्ट उठाने का कारण ?" चाय लाने की आज्ञा देते ट्रेजरी अफसर ने कहा।

'शेखर को टी० ए० का रोग हो गया है। उसके पेशकार ने टी० ए० के कीटाणु उसमें इन्जेक्ट कर दिये हैं। अब वह बढ़ बढ़ के हाथ मारने लगा है। इसे सदा के लिये दूर कर देना चाहिये।

'यह कैसा रोग है ? मैं कोई डाक्टर तो हूं नहीं !'

'इसके ऐसे कीटाणु हैं कि प्रवेश करते ही पैसे की ओर दौड़ाते हैं। पैसा उनकी खुराक है। फिर तो बिना पैसे के जिन्दा नहीं रहने देते। तदोपरान्त, जहां चाह वहां राह। आवश्यकता आविष्कार की जननी बनजाती है।

'लोग दूसरों का ढेंढ़र निहारते हैं, परन्तु अपनी फुली कोई नहीं देखता ? शेखर की यही दशा है। मैंने माना मुझे संगीत प्रिय है परन्तु शेखर की भांति बहू बेटियों की ओर आंख नहीं उठाता।

'एक तो तीतलौकी, दूसरे चढ़ी नीम। क्या उसकी यह भी विशिष्टता है।

'जी हां अपने पेशकार के परिवार पर पूर्णाधिकार प्रतिष्ठित किये है।'

'ऐसी बात है ? परन्तु इससे कार्य सिद्ध नहीं होगा। ऐसी चाल बताइये कि सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे।'

'अवश्य, ऐसा मजा चखाऊंगा कि बच्चू को जिन्दगी भर

याद रखो। सूप हँसे तो हँसे, चालन कैसे हंस सकती है, जिसमें हजारों छेद।'

'शुभस्य शीघ्रम्।

'उस दिन लखनऊ जनता से गया था परन्तु किराया द्वितीय श्रेणी का लिया है।'

'ऐसा तो सर से पैर तक सब अधिकारी करते हैं।'

'चोर चोर मौसेरे भाई होते हैं अतः सबकी सब छिपाते हैं। परन्तु आपको आम खाने से काम है कि गुठली गिनने से।'

'मैं तो राम बाण चाहता हूं। शेखर सौ चूहे खाकर बिल्ली बनी भगतिन की कहावत चरितार्थ कर रहा है।

'टी० ए० वाला वाउचर हाथ में थमाते, ट्रेजरी आफिसर ने कहा, इसके द्वारा फर्जी टी० ए० लिया गया है। एमेले ने उसे दिनों, घन्टों तथा स्टेशनों को नोट कर लिया। सदर के स्टेशनों पर आकर उन्होंने पता लगाया। उस दिन तृतीय श्रेणी को छोड़कर किसी भी उच्च श्रेणी का लखनऊ अथवा किसी निकटतम स्टेशन का टिकट नहीं कटा था। एमेले ने उसी दम भ्रष्टाचार उन्मूलन विभाग को रिपोर्ट कर दिया। साथ उन्होंने पेशकार के साथ मिलकर घूस लेने का भी शिकायत किया। पनश्च — शेखर के निकम्मेपन को भी इस आधार पर सिद्ध किये कि टी० ए० बिल तथा अन्य कागजात की कौन कहे सारे फैसले गोपाल द्वारा ही लिखे जाते हैं। राज्य की ओर से गहरी छान बीन प्रारम्भ हुई। जिसमें डिप्टी साहब के गलत यात्राव्यय लेने का अपराध पूर्ण रूपेण सिद्ध हो गया। पेशकार द्वारा फैसला लिखे जाने पर घूस वाला अभियोग भी अंशतः सिद्ध होता पाया गया। विभाग

दोनों का चरित्र संदिग्ध पाया। दोनों मिलकर अधिकार का दुरुपयोग किये थे। पेशकार पुराना कर्मचारी होते हुये भी शेखर को अवैधानिक कार्य करने पर अग्रसर किया अतः दोनों पदच्युत कर दिये गये।

शेखर तथा गोपाल दोनों ने इस फैसले के विरुद्ध दीवानी में दावा दायर किया। शेखर का प्रमुख प्रतिवाद यही था कि जब राज ने यात्रा विषयक प्रमाण पत्र को ही नियमानुकूल सत्य माना है तब अविश्वास का प्रस्ताव कैसे उठता है? जब तक नियम अपरिवर्तित है, मुझे पदच्युत नहीं किया जा सकता पेशकार का प्रमुख प्रतिवाद था कि मैंने डिप्टी साहब की आज्ञानुसार ही टी० ए० बिल, अन्य आज्ञायें तथा फैसले लिखा करता था। अतः मैं निर्दोष हूं।

न्यायधीश ने प्रतिवादियों के वकीलों द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक तर्क नियम एवं सबूत को देखा। उनका अंतिम निर्णय हुआ। राज द्वारा निर्मित यात्रा विषयक नियम अपने स्थान पर ठीक है। अधिकारी तथा कर्मचारी गण अपने अधिकार का दुरुपयोग न करे अतः उनके आचरण की जांच आवश्यक है। टी० ए० का रोग व्यापक हो गया है। जैसे बाल विवाह उन्मूलन में शारदा ऐक्ट निरर्थक सिद्ध हुआ, उसी प्रकार यात्रा के विषय में प्रमाण पत्र अंकित करने का प्रतिबन्ध के, उस नियम की ध्येय की पूर्ति नहीं करता। अतः यदि इस रोग को आमूल नष्ट करना है। तो नियम में परिवर्तन वांछनीय है। उच्च श्रेणी के यात्रियों को उनके नाम से टिकट बेचे जांय जिसकी एक सूची, रेलवे विभाग द्वारा सम्बन्धित विभागों को भेजा जाया करे। इसके अतिरिक्त, यात्रा व्यय का प्रामाधिकारी अपने टी० ए० बिल में टिकट नम्बर अवश्य अंकित

करे। चूंकि डिप्टी कलेक्टर के प्रतिकूल-फर्जी टी० ए० लेने का अभियोग सिद्ध हो चुका है। अतः उनके पदच्युत की आज्ञा अपरिवर्तित रखी जाती है। पेशाकार ने स्वतः अथवा एस० डी० ओ० की आज्ञा सेकागजों को, टी०ए० बिलों को और फैसलों को अवश्य लिखा, परन्तु उस पर हस्ताक्षर शेखर का ही है अतः उनका ही कृत्य माना जायेगा। पदच्युत पेशाकार निर्दोष है, उसे अपने पद पर पुनः नियुक्त किया जाता है। पेशाकार शुक निकल गया।



मनी आर्डर भेजे होता

'तुम अब भी खेती क्यों नहीं अपनाते ? 'लल्लो ने पति को सम्बोधन करते कहा।'

'क्या खेती करने ही के लिये तुम्हारे पिता ने दस हजार दहेज देकर तुम्हारा विवाह किया था ?' लल्ला बाबू ने पत्नी को उत्तर दिया।

'तब किस लिये दिया था ? तुम्हारी लम्बी चौड़ी जमीन्दारी थी। सैकड़ो बीघे खेत थे'।

'सब कुछ था– परन्तु हमलोग रईस थे। जुते खेत में पैर न डालने वाले बाबू थे।

'तुम जो थे, वह थे– परन्तु हाथी के दिखाने वाले दांत की तरह ठाट बाट तो बहुत बड़े थे और करनी कुछ नहीं।'

'हां बीसों नौकर और कारिन्दे थे। जमींदारी से रोज वसूली होती थी। सब खेत असामियों को जोतने खाने के लिये दे दिया गया था। जब काम न करने से ही ठाट बने थे तो करके क्यों बड़प्पन खोया जाता ?'

'तुम्ही न कहते थे पहली जुलाई सन् १९५२ से जमीन्दारी भी टूट गई। अब जीवन यापन का प्रबन्ध करो। कुछ खेत पकड़ो। तुम्हारे पूर्वजोंने जिनको जीविका प्रदान की, वे तुम्हारे निमित्त भी अवश्य कुछ करेंगे।'

'देकर वापस लेना, मनुष्यता नहीं।'

'फिर कैसे चलेगा ?'

'जो एक को खिलायेगा, वह दूसरे को मारेगा थोड़े ?'

'तुम भ्रम में पड़े हो। दूसरे का भरोसा करने वाला

आलसी और अकर्मण्य होता है।

'खेत रहते खेती न करने वाले जमींदारों को ८३ एकड़ प्रति परिवार मिलेगा ऐसा कानून बना है'।

'हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और होते है। तब मैं अत्याचार करूं उन पर जिनको बाप दादों ने पाला पोसा था।'

'ताली दोनें हाथों से बजती है। तुम उपकारी बनने का दम भर रहे हो और वे अपकारी ही नहीं खुल्लम खुल्ला विद्रोही बन रहे हैं।'

'तब उसी मुद्रा में मैं भी उनका मूल्य चुकाऊं।'

'और लोग नहीं कर रहे हैं। कितने उन्हे गोली के घाट उतार कर अपनी जमीन पर अधिकार कर लिये। कितने रुपयों के बल पर पटवारी तथा बड़े अधिकारियों से मिलकर अपनी अधिकांश जमीन कागज में जोत लिये।

'दाने दाने बिना मर जाऊंगा, परन्तु ऐसा नहीं करूंगा ८३ एकड़ अवश्य मिलेगा। उसके ऊपर मुआवजा तथा पुनर्वास भी मिलेगा।

'धनि, धन और धरती पास की ही अच्छी होती है। जो अपने वस्तु की रक्षा नहीं कर सकता, वह संसार में कुछ नहीं कर सकता।

'जिसने मुंह दिया है, वह भरेगा भी।

'तब ले जाओ इन पांचों बच्चों को जो आज दाने दाने को मुहताज हो रहे हैं। अब मेरे पास न गहने रह गये हैं और न पहनने को वस्त्र। गत दो वर्षों में सब जठराग्नि शांति करने में ही समाप्त हो गये। यह नन्हें दो वर्षों का हुआ। जन्मते ही बाप दादों की जमींन्दारी लिया, अब मरने को हुआ

है दवा का भी दाम नहीं कैसा अभागा है बेचारा कहते कल्ली फूट पड़ी।

'रोती क्यों हो, शैव्या को और सीता को देखो, जिन्होंने अपने पतियों का आड़े वक्त में साथ दिया था। पचास रुपये मुआविजे मिलने की नोटिस तो आई ही है।

'आज पन्द्रह दिनों से इसी की आश ले रहे हो। हो सके तो शाम तक, तहसीली से लेकर लौट कर आओ।

'कुछ खाने को दे? कचहरी जाने के लिये कुछ पैसे भी चाहिये।

'कल शाम तक दो उपवास करने के बाद तुम्हारा तथा बच्चों का प्रबन्ध कर पाई थी। अब इतने उधार हो गये हैं कि कहीं मुंह भी दिखाने लायक नहीं रह गई हूं।

'मैं भी उसी ताक में यत्न कर रहा हूं। अच्छा, नन्हें का कुंडल दे दो ताकि कहीं बन्धक रख कर कुछ लाया जाय

'मरणासन्न नन्हें के कुंडल उतारते समय मां के हृदय के टुकड़े टुकड़े हो गये। अभी मुश्किल से तीन सप्ताह व्यतीत हुये होंगे कि वह अपने नैहर से लौटी थी। बिदाई के समय शिशु को उसकी नानी ने सोने के कुंडल पहिना दिये थे।

'लल्लू बाबू ने कारिन्दे को बुला कर कुंडलों को दिया। कारिन्दा इस गरीबी में भी मालिक का आटा गिला कर रहा था।' वह पहिले से ही उनको पचासों बीघे खेत हथिया लिये था। और दुनिया की आंखों में नमक हलाल के लिये अपनी हाजिरी से अब भी साथ देता जा रहा था। अच्छे दिनों में प्रजा से बेगारी लेकर उनपर अत्याचार करके हमेशा अपना उल्लू सीधा किया, और मालिक को बदनाम करके दोनों के मध्य एक अलंघ्य खाई खोदता रहा।

स्वर्ण के एक तोले का कुंडल उसने अपने घर रखकर मालिक को दस रुपये उधार दो रुपये सैकड़े सूद पर ला कर दिये।

'इतना ही मिला ?'

'सोना बड़ा खोटा था, सुनार बड़ी मुश्किलों से इतना दिया। अच्छा कल और के लिये कोशिश करूंगा।'

'तहसील जाकर मुआविजे का पचास रुपये लाना है। जाओ लेते आओ' लल्ला बाबू ने आदेश दिया।

'आप ही चले जाइये। अब तो मुझे अपने ही कामों से समय नहीं मिलता।'

'आज तक अदालत का मुंह नहीं देखा, तो अब क्या दिखलाओगे ?'

'आज चला जाता हूं परन्तु नहीं मिलेगा तो कभी नहीं जाऊंगा।'

'नन्हे की तबियत खराब है जैसे हो रुपये लेकर आना।' पांच रुपये व्यय के लिये देते हुए लल्ला बाबू ने कहा।

'इतने से काम नहीं बनेगा मुख्तार साहब, वाउचर बाबू, खजांची बाबू और लिखाई नवीस में से प्रत्येक दो रुपये लेंगे। एक रुपया मुहर्रिर के और एक रुपया किराये और मेरे भोजन के लग जायेंगे।

'इतने रुपये लगेंगे ?'

'असामियों से एक रुपये बकाया लगान की वसूली में तो सैकड़ों रुपये स्वाहा हो जाते थे। यह तो बंधी हुई रकम है। उसपर से डिप्टी साहब के पेशकार और अर्दलियों को छोड़ ही दिया है।'

'परन्तु ये रुपये तो सरकार खे पाने हैं।'

'कर्मचारी ही सरकार है जैसे कारिन्दा जमीन्दार था। पांच रुपये पुनः थमाते लल्ला ने मन ही मन कहा हे भगवान इन कारिन्दों के ही कुकर्मों का फल आज जमीन्दार भुगत रहे हैं क्या अपने कर्मचारियों के कर्मों का फल राज भी इसी प्रकार भोगेगा।

घर भोजन करके कारिन्दा पैदल ही तहसील पहुंचा। मुख्तार साहब से मुख्तार नामे पर हस्ताक्षर कराकर एक रुपया थमाया। मुख्तार साहब ने भ्रू कुंचित करते कहा एक रुपया तो मेरा मुहर्रिर लेता है।

'इसे रखिये-कल मालिक आवेंगे तो सफाई कर देंगे। अब तो जमीन्दारी भी गई।'

'आप डूबा तो जग डूबा।

'ना मामा से काना मामा अच्छा होता है।'

'आजी मेरे लिये तो एक जमीन्दार गया हजार किसान आये।'

'आप से बहस में मैं नहीं जीत सकता।'

'अच्छा अब रुपये मिलने हो तो मुझे लिवा लीजियेगा। मुख्तार साहब से निपटते कारिन्दा मुख्तार नामे तथा नोटिस को एक रुपये के साथ वाउचर बाबू के हाथों दिया।

'फट क्यों जोड़ा लगाया।' बाबू ने इशारा किया।

'जो मालिक दें वही न। कल आवेंगे उनसे निपटा लीजियेगा काम आगे सरकाइये।'

'कारिन्दा दो बजे मुख्तार साहब को लेकर रुपये लेने खजाने गया और एक रुपये बढ़ाते हुए खजांची से वाउचर का रुपया मांगा। मुख्तार ने आंखें मारा।

'ताक ही क्यों?" खजांची ने पूछा।

'मैं तो कारिन्दा ठहरा। जो पाया सो लाया। कल मालिक आवेंगे उनसे समझ लीजियेगा।'

'ठीक है, परन्तु वाउचर अभी नहीं आया है।'

कारिन्दा दौड़ा दौड़ा वाउचर बाबू के पास गया और पूछा—

'वाउचर वासिल बाकी नवीस के यहां गया है।' उसे उत्तर मिला। वहां से वह इन्छिजत बाबू के यहां गया और उनको भी एक रुपये से पूजा करते वाउचर मांगा।

'बंधी रकम में भी कटौती' उसने टोका।

'मैं तो धावन ठहरा।' जो बाबू साहब ने दिया, उसे पेश किया। कल वह आ रहे हैं, बातचीत कर लीजियेगा।'

'वाउचर मेरी रिपोर्ट के साथ पेशी में गया है। चार बजे तक वापस आ जायेगा।'

'तब तो आज रुपया नहीं मिलेगा।'

'अभी तीन बज रहे हैं, शीघ्रता से पेशकार साहब के यहां जाइये, कदाचित् वह दे दें।'

इजलास में कारिन्दे के पहुँचते ही, चपरासियों ने पेशी मांगी उनकी अवहेलना करते, वह पेशकार के यहां पहुंचा। अर्दली का इशारा पाते ही पेशकार ने कारिन्दे को वह डांट बताई कि उसके होश ठिकाने आ गये। वह अर्दलियों से उसे निकलवाने ही जा रहा था कि बेचारा इज्जत लेकर भागा तबतक चार बज गये। अब उसकी कौन सुनता?

वह सर पर पैर रखे गांव वापस आया। देखते ही लल्ला बाबू ने कहा, 'बड़े मौके से आ गये। अब बच्चे को जान बच जायेगी और चूल्हा भी जल जायेगा।'

'कचहरी वालों को थोड़े फिक्र है कि आपके घर चूल्हा नहीं जल रहा है और आपका बच्चा बीमार है।'

'फिर क्या हुआ ?'

'रुपया नहीं मिला। अब मुझे अवकाश नहीं। आप कल जाकर स्वयं लाइये।'

'आखिरी वक्त में मगह का वासी बनाकर ही दम लोगे।'

'कबतक बटायू के लाला बने रहियेगा ? अब भी हाथ पैर चलाइये। मैं कहां तक यह गाड़ी खींचता चलूंगा ?'

'तुमने हमें बेकार बना दिया है, अब उपदेश देने चले हो। अंधेरे में परछाई भी साथ छोड़ देती है।'

'मुझे तो कुंआ खोदकर पानी पीना है। मेरे सहश्य लंगड़े के लिये आपके संग में दीवाल फांदना, कहां तक उचित होगा ? लल्ला बाबू सन्न रहगये। लल्ली की आशा पर भयंकर तुषार पात हो गया। चूल्हा कैसे जलेगा ? नन्हे के लिये दवा को कौन कहे, एक छटांक दूध का भी ठिकाना नहीं।'

'अब क्या होगा ?' लल्ला ने कहा।

'कल तुम्हें स्वयं जाना होगा।'

'परन्तु आज रात ?'

'आज तो कोई नई बात नहीं। दो वर्षों से ऐसी रातें रोज ही आती हैं। आज नहीं खायेंगे कल की कल देखी जायगी। जिस भगवान ने रोजी छीन लिया, वही नन्हें को जीने या रखे।'

'भगवान ने नहीं छीना, उसके बनाये आदमी ने।'

'आदमी ने नहीं, उसके विधान ने।'

'विधान भी तो आदमी द्वारा निर्मित है।'

"हाँ, परन्तु उस सीमा तक पहुँचकर आदमी बदल जाता है, लक्ष्मी-पात्र हो जाता है। उसके सारे कार्य सिद्धांत तथा उपदेश तक ही सीमित रह जाते है।"

"तुम्हारा कथन ठीक है।"

"तो उनका धन क्यों नहीं बाँट दिया जाता ?"

इस प्रत्युत्तर से लल्ला बाबू चिढ़ गये और झल्लाये,

"स्त्रियाँ मूर्ख होती हैं। जनतंत्र ईश्वर है, सर्वशक्तिमान है। वह सिद्धांत बनाता है, उसे कार्यरूप में परिणत करनेवाली उसकी मशीनरी है।"

"अब तो सरकार ही जमींदार हो गई।"

"उसकी भी जमींदारी छिनेगी।"

"वह जमीन नहीं जोतती।"

"तो जमींदार ही कब जोतते थे ?"

"परन्तु सरकार के आदमियों में हजारों बीघे जोतनेवाले हैं। सचमुच चिराग-तले ही अँधेरा होता है।"

"तो क्या दूसरे का सुहाग देखकर मैं अपना सर फोड़ डालूँ ?"

"जो जी में आवे, करो।"

इतने में नन्हें रो उठा।

बातों से पेट भरकर पति-पत्नी ने बड़ी कठिनता से रात काटी। दूसरे दिन लल्ला बाबू मुआविजा लेने स्वयं तहसील चले कारिन्दे से बड़ी मुश्किलों से और पांच रुपए लेकर। रास्ते-भर कारिन्दे की नमकहरामी, बच्चे की बीमारी और पैदल चलने की दुरूहता पर अपने भाग्य और सरकार को कोसते, ८ मील पग-पग पर पूछते-पूछते पहली बार तहसील आए। जो मुख्तार साहब इनकी दस्तखत पर काम कर देते थे, वही इन्हें स्वयं उपस्थित देखकर पहचान भी नहीं पाये।

फिर भी उन्होंने अपने फीस की माँग पेश कर दी।

"मैंने तो कारिन्दे को दे दिया था।"

"दे दिया होगा। परन्तु रोज की फीस रोज मिलनी चाहिए।"

लल्ला बाबू एक रुपया देने लगे, परन्तु मुख्तार साहब इसमें अपनी हेठी का दिग्दर्शन करते बड़ी मुश्किलों से उसे ग्रहण किए और मुहर्रिर को आदेश देकर उनके साथ लगा दिए कि काम करा देना, और जैसी करनी, वैसी भरनी का पाठ पढ़ाकर चल दिए। दलाल मुहर्रिर ने अपनी चटपटी जबान से लल्ला बाबू का मन हरा करते एक रुपया अपना पारिश्रमिक ऐंठ ही लिया और खजांची बाबू को एक रुपया और पेशकार को दो रुपए दिलवाया। लल्ला बाबू कारिन्दे की करनी पर झुँझलाते साथ में लाए पाँच रुपए पुनः पूजा चढ़ा दिए दिनभर उपवास-व्रत धारण करके। शाम को मुहर्रिर से ज्ञात हुआ कि वाउचर पर डिप्टी साहब ने दस्तखत नहीं किया, क्योंकि नियमानुकूल प्रतिदिन पचास वाउचरों से अधिक पर वे नहीं करते।

"फिर कब मिलेगा ?" लल्ला ने उद्विग्नता प्रकट की।

"कल आइए।"

"क्या आज के किए पर पानी फिर गया ?"

"नहीं, कल कुछ नहीं देना पड़ेगा। हाँ, पान - पत्ते के लिए जरूर कुछ लेते आइएगा। मेरा परिश्रम देखकर जो आपकी इच्छा होगी, वह मेरे शिरोधार्य होगा।"

लल्ला बाबू वाभिन्न - हृदय तहसील से चले। रास्ते-भर नाना आशंकाओं से उनका मस्तिष्क आक्रांत था—'नन्हें कैसा होगा ? लल्ली भोजन बना पाई होगी या नहीं ! उसके पास तो एक पाई भी नहीं थी। डाक्टर आया होगा कि

नहीं? वह तो बड़ा हृदय-हीन है, पहले ही की भाँति फीस लेता है। उस दिन मुझपर बड़ा एहसान किया। कहा, जमादारी टूट गई, आपका आर्थिक संतुलन डाँवाडोल हो गया। फीस नहीं लूँगा, केवल दवा का दाम चाहिए पाँच रुपए। अस्तु उसने उसी के लिए। बड़ा बाबू स्कूल फीस के लिये परेशान किए था। पास कराई कौन कहे, शुरू कराई भी नहीं दे पाया था। मास्टर ने उसे स्कूल से निकाल दिया। खेत भी तो नहीं है, बाप-दादों ने अपने आदमियों को जीने-खाने के लिए सब के सब दे दिए थे! कोई छोड़ नहीं रहा है, कौन-सा काम किया जाय— दा एकड़ भी नहीं मिल रहा है. नरक में भी ठेला-ठेली हो गई। पुराने कपड़ों से अब तक तन ढकता रहा, अब तो उन्होंने भी साथ छोड़ दिया। मकान से बाहर वर्षा की एक बूँद भी नहीं जाने पाती। स्वागतार्थ जैसे वह हृदय फैलाए रहता है। नौकर-चाकर भले दिन के ही साथी होते हैं। जमींदारी के साथ वे भी रफूचक्कर हो गए। न तो मुआविजा ही एकमुश्त मिलता है और न पुनर्वास ही। इस घुल-घुलकर मरने से तो जीवन-लीला समाप्त कर देना श्रेयस्कर है।' अंतिम विचार के आते ही लल्ला बाबू घर पर पहुँच चुके थे। लक्ष्मी ने अश्रुपूर्ण नयनों तथा भरे गले से उनका स्वागत किया। नन्हें को त्रिदोष हो गया था। चेतनाहीन वह मां-मां, बाबूजी, दीदी जैसे प्यार-भरे शब्दों से प्रलाप करते छटपटा रहा था।

"दवा आई थी, डाक्टर आया था, दूध मिला था?" लल्ला बाबू एक साँस में कितने प्रश्न पूछ गये। परन्तु दम्पति के करुणा-पूर्ण नेत्रों ने दृष्टि-विनिमय करके, सारे प्रश्न हल कर लिए। लल्ला बाबू के अगाध समुद्र में डूबे जलयानके असहाय यात्री की भाँति अपना शिथिल शरीर, ऊंचन-विहीन खाट पर डाल

दिया। लल्ली अपने लाल का तड़फड़ाना रात-भर देखती रही, जिसकी भयंकरता में स्वप्नमग्न लल्ला बाबू अपने अट्टहास, करुण क्रन्दन, तथा अनर्गल प्रलाप से योग दे रहे थे। बाल-रवि की प्रथम किरणें अभी उनके भग्न-भवन की खिड़कियों से भयभीत भीतर घुसने का प्रयास मात्र कर ही रही थी कि लल्ला बाबू भयंकर चीत्कार के साथ उठकर दौड़ पड़े—'अरे पकड़ो, मेरे नन्हें को वह छीने जा रहा है!' परन्तु सामने रक्खी टूटी आलमारी से टक्कर खाकर वहीं गिर पड़े। लगी हल्की चोट ने उनकी आंखों को खोला। भय से उनका सारा शरीर काँप रहा था और पसीने से सराबोर था। अरे, वह कहाँ गया, भाग गया, नन्हें कहां है? मानसिक उद्विग्नता में उनके मुंह से फिर भी निकल गया। कितनी ही भयंकर विपत्ति हो, बीमारी हो, परन्तु ब्रह्मवेला उसका आवेग कम कर देती है। लल्ला ने देखा, नन्हें निद्रित मां के शरीर से, बन्दर के बच्चे की भाँति, चिपके सो रहा है। वह उठे और सीधे तहसील की ओर बढ़े। सवेरे के भयंकर स्वप्न ने उनके मस्तिष्क का संतुलन खो दिया था। प्रातःकाल का स्वप्न सच्चा होता है, यह भावना उनके मस्तिष्क को खाये जा रही थी। अब क्या होगा, सब कुछ गया, क्या मेरा नन्हा भी मेरे हाथोंसे जाता रहेगा? क्या भगवान् एक साथ ही इतनी विकराल विपत्तियों का बोझ पर्वत ढा देता है? नहीं, वह कुछ नहीं करता। उसके बनाये आदमी ही अपनीवाली करते हैं, नानाप्रकार की राजनीतियों की आड़ में। फलस्वरूप अगणित अशन-वसन-आवास-हीन जीवन-यापन कर रहे हैं, परन्तु साधनसम्पन्न हैं, उन्हें रहित करना, विश्वामित्र की भाँति अन्य सृष्टि उत्पन्न करने का अस्वाभाविक प्रयास करना है..ईश्वरत्व से होड़ लगाना है। इस प्रकार सोचते ६॥ बजे वह सीधे तहसील में डिप्टी साहबके पास पहुंचे और उनसे मुआ-

बिजे की रकम दिलवाने का सवाल पेश किए अपनी परेशानियों और विपत्तियों का दिग्दर्शन कराते हुए।

"आपकी भाँति लाखों जमींदार हैं, मैं किस-किस की व्यक्तिगत सहायता कर सकता हूँ। मैं तो विधान से बँधा हूँ।"

"यदि आप शीघ्र दिलवा देते, तो मेरा बीमार बच्चा बच जाता।"

"दफ्तर में ही कागज-पत्र हैं। बिना बाबू लोगों के मैं कुछ कर सकने में असमर्थ हूँ।"

"हे भगवान्, अब क्या होगा?"

लल्ला बाबू वहाँ से सीधे आफिस में आये। रुपए शीघ्र पाने के लिए उन्होंने लाख अनुनय-विनय की, बच्चे की बीमारी की दुहाइयाँ दीं, परन्तु कछुए की पीठ पर बाल जमाने की भाँति वह बाबू लोगों पर प्रभाव-रहित रही। दो बजे से रुपया मिलना आरम्भ हुआ। भीड़ छँटने पर, लल्ला बाबू को चार बजे पचास में से तीस रुपए मिले, क्योंकि बीस रुपये बकाया माल-गुजारी के काट लिये गए थे। वह अपने पैरों को शीघ्रता से उठाने का प्रयत्न करते गाँव की ओर बढ़े। पैर बढ़ने से साफ इन्कार करने लगे, क्योंकि तीन दिनों से पानी पर ही पेट काटे थे। निर्बलता चलने में बाधा उपस्थित कर रही थी, परन्तु पुत्र और पत्नी की ममता उन्हें आगे बढ़ने को बाध्य कर रही थी। ज्यों-त्यों करके वह सात बजे गाँव पहुँचे और सीधे डाक्टर के यहां गये, और बोले, "डाक्टर साहब, अभी चलिये, बच्चे को देख लीजिए। उसे त्रिदोष हो गया है।"

जिस प्रकार धनहीन मनुष्य को देखकर गणिका और वकील नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं, उसी प्रकार लल्ला बाबू को देखते ही डाक्टर की मुख-मुद्रा बदल गई। फिर भी उन्होंने कहा, "पुराने सम्बन्ध का स्मरण करके मैं आपसे केवल दवा का

दाम लेता हूं, वह भी नहीं मिल पा रहा है मैं नहीं चल सकता।'

'कुल कितने बाकी हैं ?"

"चालीस रुपये।"

"मेरे पास कुल तीस रुपये हैं, स्वीकार कीजिए और शीघ्र चलिये।"

जिस प्रकार वणिक को डूबे धन और सुरासेवी को सुरा-पूर्ण पात्र की प्राप्ति पर प्रसन्नता होती है, वही डाक्टर को इन रुपयों के आगमन से हुई। मेज के ड्रायर में इन्हें बन्द कर वे दवाइयों का बक्स और स्टेथेस्कोप लेकर लल्ला बाबू के साथ पैदल ही चल पड़े और उनके घर पहुँचे।

उन्हें देखते ही लल्ली चिल्ला उठी, "हटाओ इसे अभी हटाओ। डाक्टर की यहाँ जरूरत नहीं। यह पैसे लेगा, मेरे पास नहीं हैं।" यह कहते वह अपने चिर-निद्रित पुत्र को सोया समझ फटे आँचल से छिपाने का प्रयत्न करने लगी।

डाक्टर की आगे बढ़कर शिशु के छूने की हिम्मत नहीं हुई। टिमटिमाते दीपक की लौ में उसने पहुंचते ही देख लिया था कि खाट पर पड़े शिशु का शरीर सफेद होकर अकड़ गया है और उसकी पलकें स्पन्दन-हीन हैं। वह पीछे हट गया।

लल्ला बाबू को डाक्टर का भाव समझने में विलम्ब न लगा। सब समाप्त हो गया था। वह अपनी बिलखती धोती के टुकड़े में पुत्र के शव को करुण क्रन्दन करती लल्ली के हाथों से कठिनता से छुड़ाकर बाँधे और कुदाल कंधे पर रखे श्मशान की ओर सोचते-सोचते अग्रसर होने लगे—'आज मेरी ऐसी दुर्भाग्य! मेरे कलेजे का टुकड़ा दवा बिना चला गया, उसे कफन तक नसीब न हुआ। यदि आफिस मुआविजे के रुपये को नोटिस के साथ ही मनीआर्डर भेजे होता, तो कदाचित् मेरा नन्हें बच गया होता !'

पिता का दावा

इस युग में हम प्रायः नित्य देखते, सुनते और पढ़ते हैं कि अमुक पुरुष या स्त्री ने सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण, अपने प्रिय से आत्म-बन्धन में विफल होकर, आत्महत्या कर लिया। परन्तु इसकी ओर अन्यमनस्क होकर, हम एक विरक्त की भाँति अपने स्वार्थ मूल में लगे रहते हैं, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। इन प्रेम के शहीदों के खून से जब समाज के अत्याचार का घड़ा लबालब भर जाता है, तो अनायास इसकी एक भयानक प्रतिक्रिया होती है। फलतः समाज और सरकार को इन्हें पूर्ण विराम देना पड़ता है, प्रथम को अपना प्रतिबन्ध ढीला करके और द्वितीय को विधान द्वारा सुविधा प्रदान करके। कुछ साहसी इनकी प्रतीक्षा किए बिना ही, अपना मार्ग स्वयं ढूँढ़ लेते हैं। ऐसी ही एक दुस्साहसपूर्ण घटना का वर्णन मैं आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ, जो हाल ही में समाचारपत्रों में छपी थी। जिससे सम्बन्धित चरित्रों ने हिन्दू-कोड-बिल या समाज की बाट नहीं देखी।

जब करुणाकर प्रणय-सूत्र में बँधकर लौटा, तो उसके आनन्द की सीमा न रही। उसने अपने को उन विरले भाग्यवानों में समझ लिया, जिन पर भाग्य ने कभी इस प्रकार मुस्कराया था। बात भी ऐसी ही थी। उसका विवाह उसकी अनुरूपा करुणामयी से होकर आया था, जिसके निकट-सम्पर्क में वह शैशवावस्था से ही था। दोनों एक दूसरे को

पूर्णरूपेण पहचानते थे क्योंकि करुणामयी उसके सम्बन्धी के घराने की थी, जहाँ वह अपना ग्रीष्मकालीन अवकाश प्रति वर्ष, प्राथमिक शिक्षा से लेकर एम० ए० पास करने तक, उसके साथ ही व्यतीत करता चला आया था। इस आत्मबंधन में विशेषता यह थी कि दहेज का प्रश्न नहीं उठाया गया। अभिभावकों ने समाज के समक्ष, अपनी पूर्ण स्वीकृति देकर, एक क्रांतिकारी कदम रखा, जो सर्वथा अनुकरणीय था। वर-वधू के घर पहुँचते ही, भगवान अंशुमाली इस आनन्द-समारोह से विदा लेकर तीव्रगति से विश्राम-निमित्त अस्ताचल की ओर चले जा रहे थे। करुणाकर भी अपनी बैठक की कोठरी में, गर्मी की अवहेलना करते, एकांत पाकर बैठ गया। उसका मन जमीन-आसमान के कुलावे एक करने लगा—आज रात करुणामयी से मैं एक नये रूप में भेंट करूँगा। वह पत्नी होकर आई है, और मैं उसका पति। जीवनकी अधूरी गाड़ी आज दो पहियों के लग जाने से पूर्ण हो गई। मन मन से मिलकर, आत्मा आत्मा से एकात्म होकर, गणित के नियमानुसार दो नहीं, एक हो गये। वह मेरी है, मैं उसका। वह घूंघट काढ़े कमरे के कोने में दुबकी बैठी रहेगी। मैं अचानक पहुँचूंगा। उसकी घूंघट खींच लूंगा, वह लज्जा से सिकुड़ जायगी। वह रूठेगी, मैं मनाऊँगा। इस प्रकार वह मनमोदक खाते जा रहा था। बीच-बीच में उसके मित्र, उसे बधाई देने आते, परन्तु वे उसके महान् भोग में कंकड़ी—से लगते। वह नौकर द्वारा कहला दिया करता कि उसकी तबियत ठीक नहीं है। उसकी भावना में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित होना, इस समय उसे असह्य हो जाता। वह टूटी शृंखला पुनः जोड़ने लगता। कभी वह अपने को उपन्यास के नायक के रूप में देखता और करुणामयी को नायिका के। अब

मैं उसे एक क्षण के लिए भी अपने से अलग नहीं होने दूंगा। इस प्रकार मस्तिष्क को अविराम गति से उलझाए जा रहा था कि समयसूचक यंत्र ने अपना गला फाड़कर उसे नौ बार चेतावनी दी, और उसी समय उसे खाने को बुलाने के लिए नौकर भी आया। अरे, रात हो गई! अनायास ही उसके मुँह से निकल पड़ा। पसीने से उसके वस्त्र भींग गए थे। वह तौलिए से शरीर को पोंछकर गर्मी पर मन-ही मन कुढ़ते, जीमने चला। आसन पर बैठते ही उसकी भाभी ने थाली लगाते ताना मारा—

"खयालों में पड़कर खाना-पीना भूल गए, तो कैद हो जाने पर तो सब कुछ भूल जाइयेगा।"

"नहीं भाभी, थक गया था।"

"हाथ और मुँह रुक-रुककर चलते, अरुचि प्रकट कर रहे हैं। क्या वे भोजन नहीं, कुछ और चाहते हैं? आपकी पलकें जिज्ञासु बन रही हैं; क्या वे नींद नहीं किसी और को ढूँढ रही हैं?"

अनसुनी करते करुणाकर ने झटपट भोजन किया। हाथ-मुँह धोते समय उसके कानों में भाभी के बच्चे की रोने की आवाज आई। उसकी प्रत्युत्पन्नमति भाभी ने तुरन्त आदेश दिया, "उस कमरे में मुन्ना रो रहा है। जरा लेते आइए। तब तक मैं पान बनाती हूँ।"

कमरे के भीतर पैर रखना था कि वह उसमें बन्दी हो गया। भाभी ने विद्युत गति से किवाड़ की बाहरी साँकल चढ़ा दी। इस कैद में उसे वही शान्ति मिली, 'जो रोगी को भावे वही वैद बतावे' वाले भुक्तभोगी को मिलती है। उसने भी भीतर से सिटकनी बन्द करके, अपने बन्दी होने की पुष्टि कर दी।

करुणाकर कुछ देर तक दरवाजे पर ठिठका रहा । वहीं से खड़े खड़े निगाह दौड़ाया और देखा, पलंग के पायताने, पाए के पास, बहू का वस्त्र विशेष धारण किए उसकी करुणा दोनों घुटनों के मध्य मुँह को घूँघट से छिपाये गठरी बनी बैठी है । आज करुणा इस प्रकार क्यों लज्जा का अनुभव कर रही है ? उसे तो प्रसन्न होना चाहिए । गँवारिनों की भाँति आपाद-मस्तक ढके क्यों पड़ी है ? सम्भवतः मुझे घर का कोई और सदस्य समझ रही है ? करुणाकर ने अपनी जिज्ञासा के समाधान निमित्त पुकारा—"करुणामयी !"

शब्दों का मुख से सम्बन्ध-विच्छेद होना था कि विद्युत् गति से जलद-पटल के मध्य से पूर्णचन्द्र दृष्टिगोचर हुआ।

"जीजा, नमस्ते ।" उसके कानों ने एक मधुर अभिवादन सुना ।

यह क्या ? यह तो लावण्य है, करुणा की चचेरी बहन । वह भौंचका-सा रह गया । क्या मेरी आँखें धोखा दे रही हैं ? उसने अंगुलियों से मीचकर आँखों की परीक्षा ली, परन्तु दृश्यान्तर नहीं हुआ । तब ! क्या मुझे धोखा दिया गया ? यदि नहीं, तो मुझे जीजा क्यों पुकार रही है ?

"लावण्य ! तुम यहाँ कैसे ?"

"मैं इस पार्थिव शरीर से अग्नि के चतुर्दिग भाँवरें पड़ी हुई आपकी पत्नी हूँ ।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"यही हुआ है। चक्षु के समक्ष साक्षी की आवश्यकता ?"

"तुम्हारा विवाह तो ललित से होनेवाला था ?"

"जो होनेवाला था, वह नहीं हुआ ।"

"तुम तो ललित को ही चाहती थी ।"

"चाहा हुआ नहीं मिलता ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि परतंत्र चाहता है, स्वतंत्र करता है।"

"परतंत्र का अर्थ ?"

"आधिभौतिक अर्थ मे दास, सामाजिक में स्त्री, और आध्यात्मिक मे जीव।"

"तदनुरूप स्वतंत्र का अर्थ ?"

"सांसारिक दृष्टिकोण से मालिक, अभिभावक और पारमार्थिक विचार से ईश्वर।"

"तुम्हारी व्याख्या का अर्थ आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक, किस रूप में लिया जाय ?"

"दोनों में; क्योंकि दोनों अन्योन्याश्रित हैं।"

"प्राथमिकता किसको दी जाय ?"

"आध्यात्मिक को।"

"एवमस्तु। ईश्वर की इच्छा से ही संसार की सृष्टि हुई है। स्त्री-पुरुष पैदा हुये हैं।"

"हाँ, हुये हैं।"

"उसकी इच्छा यह भी है कि इनमें आत्मिक सम्बन्ध हो।"

"अवश्य।"

"फिर अनुरूपात्माओं को आत्मबन्धन से क्यों रोका जाता है ? यह परमात्मा की इच्छा के विरुद्ध नहीं हुआ ?"

"हुआ। परन्तु हमें समाज के साथ रहना है।"

"ईश्वरीय विधान प्रधान और सामाजिक गौण है।"

"इसका अर्थ ?"

"यह कि समाज भी चाहता है कि स्त्री-पुरुष एक सूत्र में बँधें।"

"ठीक है, परन्तु इसका आत्मिक सम्बन्ध नहीं, भौतिक सम्बन्ध कराता है।"

"जब तुम्हारा विवाह ललित से पक्का था, तो मेरे साथ कैसे हुआ ?"

"ऐसे कि मेरी कुण्डली के ग्रह आपसे मिलते थे और करुणा की ललित से।"

"विवाहशास्त्र में वयस्कों की कुण्डली मिलाने का नियम नहीं है।"

"परन्तु यहाँ इसकी अवहेलना की गई।"

"क्या तुम्हारा और करुणा का इसमें विश्वास है ?"

"कदापि नहीं।"

"तब तुम लोगों ने इसका विरोध क्यों नहीं किया ? हमें बतलाया क्यों नहीं ?"

"क्योंकि सब कुछ समाप्त होने तक गोपनीय रखा गया था।"

"क्या तुम्हें यह सम्बन्ध पसन्द है ?"

"कदापि नहीं; परन्तु स्त्री को इस प्रश्न के निर्णय का अधिकार ही कहाँ ! स्त्री की सत्ता उसकी दासता में निहित है। परन्तु आपको ?"

"मेरी समझ में यह आत्महत्या है। क्या इस शृंखला को तोड़ने का तुममें साहस है ?"

"है, परन्तु समाज ?"

"हमें ऐसे समाज को ठुकराना है, जो अन इच्छित आत्माओं को जबरदस्ती गले में बाँधकर आत्महत्यायें कराता है।"

"फिर—"

"तुम्हें तब तक परदे में रहना है, जब तक मैं इस समस्या को हल नहीं कर देता।" कहते करुणाकर उलटे पाँव वहाँ से चला। वासुदेव की भाँति शृंखला स्वयं टूट

गई, दरवाजा स्वयं खुल गया।"

जब वह घरसे निकला, तो रात्रि यौवनावस्था को प्राप्त थी। पूर्णचन्द्र आकाश में विहँस रहा था, मानो अपने मंत्रिमंडल की मंत्रणा से किसी असम्भव प्रतीत होते प्रश्न का समाधान निकाल लिया हो। निस्तब्धता व्याप्त थी। मारुत, राकेश से शीतलता ग्रहण कर, दिवा के आतपाकुल प्राणियों पर पंखा झल रहा था। प्राणिमात्र गृह से मुक्त होकर निद्रादेवी की गोद में बाहर पड़ा था। कहीं-कहीं स्वामिभक्त श्वानों की चेतावनी की आवाज स्पष्ट सुनाई दे रही थी। करुणाकर अग्निपुर स्टेशन की ओर पैर बढ़ाये चला जा रहा था, जो उसके गाँव से दो मील की दूरी पर स्थित था। ललित के गाँव की ओर गाड़ी एक बजे से पहले जाती थी। वह दो फर्लांग की दूरी पर था कि ट्रेन को स्टेशन पर खड़ी देखा। वेन्डर्स ऐसे ऑड-आवर्स में भी पान-बीड़ी-सलाई-सिगरेट की धुन लगाए, नशेबाजों की नशाखोरी में सहयोग प्रदान कर रहे थे। वह बेतहाशा दौड़ा और टिकटघर के पास पहुंचते ही चिल्लाया, "बाबूजी, कंचनपुर का एक टिकट!"

टिकट बाबू ने उत्तर में खिड़की को बन्द कर दिया और भीतर ही भीतर कहा, "चले हैं टिकट कटाकर रेल पर चढ़ने ? जैसे इनके बाप का कोई नौकर है, जो चौबीस घन्टे खिड़की खोले और ट्रेन खड़ी रखेगा।"

ट्रेन खुल चुकी थी। वह दौड़ते प्लेटफार्म पर पहुँचा और सामने आये कम्पार्टमेन्ट का बाहरी डंडा एक हाथ से पकड़कर पटरी पर खड़ा होना चाहा कि खर्राटे भर रहे यात्रियों में से एक जो अविराम-गति से बीड़ी से आँसू गैस छोड़ रहा था, एक गहरा कश खींचकर करुणाकर की आँखों पर छोड़ते चिल्लाया, "जगह नहीं है, जगह नहीं है-दूसरे

में आओ, तमाम गाड़ी खाली पड़ी है।" लालमिर्च की भाँति तीक्ष्ण धुएँ के लगने से उसका संतुलन खो गया और वह ट्रेन से नीचे गिर पड़ा। गाड़ी गतिमान हो गई थी। भक-भक-भक करती, धुएँ के बादल फैलाती, ऊपर से निकल गई करुणाकर को रेल की लाइन के पास पड़े छोड़कर। स्टेशनवाले लाइन-क्लियर देते ही, अपने उपयोग में आये, तेल की पूर्ति निमित्त, तमाम बत्तियों को बुझाकर, विभाग के निमित्त अपनी सत्य-निष्ठा का परिचय देकर अन्दर चले गये। उन्हें क्या फिक्र कि कहाँ क्या हुआ?

आध घण्टे के पश्चात् करुणाकर की आँखें खुलीं तो उसने अपने को लाइन के पास पड़े पाया। हाथ से डंडा छूटने तक की स्मृति उसे रही, लुढ़कते हुए प्लेटफार्म से नीचे गिरने तक का होश रहा, परन्तु गाड़ी को दानव की भाँति हड़-हड़ गड-गड करते अपने ऊपर से जाते समय वह जीवन से निराश होकर बेहोश होगया था। उसे अब दृढ़ विश्वास हो गया कि जिस अदृश्य शक्ति ने उसे मृत्यु मुख से लौटाया है, वही उससे उसके ध्येय को पूर्ण कराना चाहती है, जिसके निमित्त वह बद्धपरिकर है। उसका आत्म-विश्वास अटल हो गया। विपत्तियाँ ध्येय की निश्चलता लाती हैं।

वह सोचने लगा, कंचनपुर के लिये मुझे आठ बजे दिन के पहले कोई दूसरी गाड़ी नहीं मिलेगी। ललित का गाँव अग्नि-पुर स्टेशन से पक्की सड़क द्वारा बारह मील दूर है। रेलवे लाइन के रास्ते सोलह मील पड़ेगा। सड़क से, तीन घंटे में, मैं सबेरा होते-होते पहुँच जाऊँगा। लाइन से चार घंटे लग जायेंगे। इस समय मेरे लिये एक-एक क्षण जीवन-मरण का प्रश्न है। जितना शीघ्र पहुँचा जाय, बात बिगड़ने से बन सकती है। करुणाकर ने पक्की सड़क का मार्ग अपनाया। ट्रेन

से गिराये जाने पर, उसके घुटने तथा हाथ बुरी तरह फूटकर पीड़ा दे रहे थे, परन्तु यह पीड़ा, हृदय की नहीं, आत्मा की उग्रतम वेदना में विलीन हो गई थी। क्या करुणामयी को मार्मिक ठेस न पहुँची होगी? ललित को आत्मिक क्लेश न हुआ होगा? कदाचित उसको भी इस ग्रह का फेर आज ही ज्ञात हुआ हो और मेरी ही भाँति वह भी मेरे गाँव आ रहा हो। कचनपुर से गाड़ी सवेरे पाँच बजे चलती है। पक्की सड़क भी तो रेल के समानान्तर ही जाती है। इसी उधेड़-बुन में वह एक मील बढ़ आया। यदि मैं साइकिल से चलूँ, तो कितना शीघ्र पहुँच जाऊँगा। तब, घर से साइकिल ले लूँ। उसने देखा, तो इस स्थान से उसका गाँव पौन मील पड़ता था। वह दौड़ने लगा, अपने घर की ओर, उसी प्रकार, जैसे एक विकृत-मस्तिष्क, अपनी धुन में, अपनी अनर्गल वाक्धारा, बिना किसी का ध्यान किये, छोड़ देता है। दस मिनट में वह घर पहुँचा। सौभाग्य से साइकिल बरामदे ही में रखी हुई थी। सब लोग खर्राटे भर रहे थे। वह चुपके से उसे उठाकर बाहर लाया। उसका कुत्ता टामी एक बार गुर्राया, परन्तु पहचानते ही चुप हो गया। साइकिल पर बैठते ही उसने पैडिल मारा। जब कंचनपुर स्टेशन दो मील रह गया, तो उसकी साइकिल ने, कुछ दूर भारी चलकर, आगे बढ़ने से जवाब दे दिया। वह उतरा और पिछले पहिए को देखा, परन्तु पेड़ों की सघन छाया में छन-छनकर आती चन्द्र-किरण से कुछ दृष्टिगोचर न हुआ। हाँ, उसके कानों ने फों-फों का शब्द सुना और कोई वस्तु दाहिने पैडिल को मारते प्रतीत हुई। उसने जेब से टार्च निकाला और उसकी रोशनी में देखा कि एक भयानक गेहुँअन पिछले चक्के की तिल्लियों में फँसा हुआ है और अपने फन से पैडिल पर बार बार चोट कर रहा

है। वह कैसे बच गया, उसकी समझ में नहीं आया उसने टार्च को चारों ओर घुमाया, तो उसे अरहर का एक मोटा डंठल निकट ही पड़ा मिला। उसने उलझे साँप को तिल्लियों से निवृत्त किया और इस साधारण नीति के विरुद्ध कि काल को कभी नहीं छोड़ना चाहिए, उसे वहीं छोड़ दिया। रस्सी जल गई थी, परन्तु ऐंठन बाकी थी। सर्प ने अपने उद्धारकर्त्ता की पीठ अपनी ओर घूमते ही, फों-फों करके उसके पिछले पैर पर फन पटककर आभार - प्रदर्शन किया। उसका पैर बाल-बाल बच गया। साँप को दुग्धपान कराने मे विषवर्द्धन होता है। नीम अपनी तिताई नहीं छोड़ती, चाहे गुड़-घी से ही सींचिए। यदि जड़ अपना स्वभाव नहीं छोड़ता, तो वह अपना क्यों छोड़े। करुणाकर ने अर्द्धमृत पन्नग को वहीं छोड़ साइकिल बढाया। मुश्किल से एक मील तय किया होगा कि सामने से चार-पाँच टार्चों की तेज रोशनी अचानक उसकी आँखों पर पड़ी। वे चकाचौंध हो गईं। वह उतर पड़ा। सामने पाँच दैत्याकार डकैत भाले और गँड़ासे लिए खड़े थे।

एक ने डाँटकर कहा, "जो कुछ पास हो, सीधे रख दो, वरना जान से हाथ धोओगे।"

"मुझे एक अत्यावश्यक कार्य से कंचनपुर जाना है, अत: साइकिल छोड़कर मेरी सब वस्तुएँ ले लो।"

"इसीलिए कि तुम थाने में जाकर शीघ्र रपट लिखाओ। ऐसी कच्ची गोलियाँ हम नहीं खेले है।"

उसकी अंगूठी, घड़ी, फाउन्टेन पेन, रुपए, वस्त्र और साइकिल सब पर अधिकार प्राप्त कर लिया गया। तदनन्तर दूसरे ने कहा, "इसे यहीं ढेर कर दो। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।"

"नहीं, नंगा करके छोड़ दो !" दूसरे ने व्यक्त किया ।

"आदमी शरीफ मालूम पड़ता है। चूँकि इसकी इस असामयिक आवश्यकता से हम लोगों की आवश्यकता पूरी हो गई, अत: एक गंजी और अंडरवियर इसके शरीर पर छोड़ दो, ताकि बेचारा अपने काम पर चला जाय।" डाकुओं के सरदार ने आदेश दिया। दल तुरन्त वहाँ से रफूचक्कर हो गया।

घड़ी से सम्बन्ध-विच्छेद होते समय करुणाकर ने देख लिया था कि साढ़े चार बजे थे। इस भयानक बाधा से पार होते ही वह द्रुतगति से कंचनपुर की दूरी कम करने लगा। पन्द्रहवें मिनट ने उसे वहाँ देखा, उषा-नागरी पीत-परिधान धारण किये नृत्य-निमित्त अम्बर-रंगमंच पर पदार्पण कर रही थी। कतिपय उडुगण लुक-छिपकर, इस नृत्य-दर्शन का लोभ संवरण नहीं कर पा रहे थे। विहंगावलि मधुर स्वर-ताल से अपना पूर्ण सहयोग प्रदान कर रही थी। प्रकृति-सुषमा-संगीत में उसने अपनी सफलता के स्वर का अनुभव किया। मलयानिल ने संगीत-सौरभ बिखेरकर विजय का संदेश सुनाया।

पहुंचते ही उसकी दृष्टि ने ललित को पकड़ा, वह टिकटघर की ओर बढ़ा चला आ रहा था। ललित की दृष्टि करुणाकर पर पड़ी। दोनों एक दूसरे को देखकर ठिठक गए। प्रथम अपनी अस्वाभाविक दशा पर, दूसरा उसे देखकर।

ललित ने निस्तब्धता भंग की—"ऐसी मुहर्रमी सूरत क्यों ?"

"यह हुई तुमसे मिलने की उत्कट अभिलाषा के फलस्वरूप !" और रात की आप-बीती का आद्योपान्त वर्णन कर दिया।

ललित ने तुरन्त अपने साथ लिए हुये कपड़ों को उसे दिया। उन्हें धारण कर करुणाकर स्वस्थ हुआ और पूछा—

दिया है। इसका अर्थ है समाज में उच्छृंखलता। जो जब चाहेगा, अपनी औरत को छोड़कर दूसरे की उठा लायेगा। ऐसा अनर्थ मुझसे न देखा जायगा। यह परिस्थिति असह्य है। पुत्र को छोड़ दूँगा, परन्तु धर्म को नहीं। लेकिन नहीं, उसे ठीक करना ही होगा। इस तरह नहीं मानेगा, तो न्यायालय द्वारा ही सही; हिन्दू वैवाहिक विधान अभी लागू है। खिलवाड़ नहीं है कि भांवरें पड़ी और सिन्दूर डाली स्त्री छोड़ दी जाय। बच्चू को छट्ठी का दूध याद आ जायगा। मुझसे बहस कर रहा था। मेरी गलतियाँ बतला रहा था। ऐसे बेहया लड़के हो गये हैं। व्यक्ति-स्वातंत्र्य का इस प्रकार दुरुपयोग कर रहे हैं। किसी न किसी के नियंत्रण में रहना ही पड़ेगा, बाप के नहीं, तो राज्य के ही। देखें, बच्चू कहाँ तक अधर्म करते हैं। कानून के बल जबरदस्ती बहू को लाना पड़ेगा। अनादिकाल से सबका विवाह कुण्डली ही मिलाकर होता आया है। जिससे कुण्डली मिली, उसी से हुआ। कितने खराब ग्रह हैं, करुणामयी के, वे मेरे करुणाकर की मति भ्रष्ट कर दिये हैं। मेरा बच्चा मेरी आज्ञा का उल्लंघन कभी नहीं करता था। जैसे होगा, इस पापिन से पिण्ड छुड़ाकर लावण्य को लाना होगा। इसी उधेड़-बुन में पड़े थे कि ब्रह्मवेला के शान्त वातावरण ने उन पर नींद झोंक दी। वह सो गये। उनको इस प्रकार सोए सवेरे के सात बज गए। डर के मारे किसी नौकर-चाकर की हिम्मत नहीं हुई कि उन्हें जगावे। इतने में बिरादरी के लब्धप्रतिष्ठ सरपंचजी आक्रोश के वशीभूत होकर आ गए और उन्हे झकझोरकर जगाते हुए बोले:—

"यह अनर्थ अब अत्यधिक असह्य हो रहा है। घर में भगाई स्त्री डालकर, खर्राटे भरकर सो रहे हो।"

"नहीं, सरपंचजी, मैं इसे निकालकर ही दम लूँगा।"

आँखें मीजते उन्होंने उत्तर दिया।

"परन्तु करुणाकर तो तुला हुआ है उसको रखने को।"

"उसका भी उपाय मैंने कर लिया है। अभी जा रहा हूँ ललित के बाप के यहां। यदि वह मान गया, तब तो ठीक है; वरना अदालती कार्रवाई की जायगी।"

"तुमसे यही आशा थी। यदि ऐसा नहीं किया, तो लड़का हाथ से जाता रहेगा। समाज पर कंट्रोल करना कठिन हो जायगा। धर्म की नाक कट जायगी।

"मैं अभी चला; सरपंचजी।" कहते करुणाकर के पिता उठे और नित्य कर्म से निवृत्त होकर ललित के पिता के यहां चल दिये। वहां भी वही दृश्य उपस्थित था। ललित का अपने पिता से उत्तर-प्रयुत्तर हो रहा था। वह भी लावण्य को छोड़ने के लिए नहीं राजी था। अपने सामने ही इस प्रकार की गुस्ताखाना बातें ललित को अपने बाप के साथ करते देख करुणाकर के पिता का माथा ठनका। उन्होंने ललित के पिता को एकान्त में ले जाकर सलाह किया आगे की कार्यवाही करने के लिए। दोनो राजी हो गए।

\+ + +

दूसरे दिन दोनों पिताओं ने अपने पुत्रों के विरुद्ध अपनी प्रथम भूल का परिहार दूसरी भूल द्वारा, एस० डी० एम० की कोर्ट में, इस आशय का मुकद्मा दाखिल करके किया कि दोनों एक दूसरे की विवाहिता बहू को भगा ले गये हैं, जो उन्हें वापस मिलनी चाहिए। इस जनपद में ही नहीं, अपितु भारत में यह अपने ढंग का प्रथम एवं निराला केस था। जो ही सुनता, दाँतों-तले उँगली दबा डालता। सुनवाई के दिन कोर्ट में भीड़ उमड़ पड़ी। वादियों की ओर से हाईकोर्ट के दो प्रमुख वकील थे, जिन्होंने अपने तर्कों द्वारा इस कार्य को

प्रति जागरूक नहीं है, तभी तक यह दासता, अत्याचार और बन्दीजीवन है। वरना यह समाज की अर्द्धांङ्ग है। जब चाहे, उसे पंगु बना सकती है।"

"चलो कहीं दूर देश चलें, जहाँ स्वतंत्रतापूर्वक साँस ले सकें और दो समान आत्माओं का संयोग किसी की आँखों का शूल न बने।"

"नहीं-नहीं मैं यहीं रहूँगी। यह मेरा घर है, इसमें रहने का अधिकार है।"

"यदि पिताजी निकाल दें, तब ?"

"जहाँ कहोगे, चली चलूँगी।"

स्त्रियों के पेट में बात नहीं पचती। दूसरे दिन दिनकर की किरणों की भाँति रहस्यमय बात गाँव में व्याप्त हो गई। लोग जी खोलकर, नाना प्रकार से उपयोग करने लगे।

"घोर कलियुग आ गया।" एक ने कहा।

"मुँहजला, विवाहिता स्त्री को छोड़कर दूसरी भगा लाया।" दूसरी ने व्यंग किया।

"कलमुँही, अपना मर्द छोड़कर दूसरे के घर बैठ गई।" तीसरे ने आवाज कसी।

चिराग-तले ही अँधेरा होता है, बात गाँव-भर जान गया, परन्तु घरवाले बिना जाने ही रहे। फिर भी उड़ते-उड़ते बात करुणाकर के पिता के यहाँ पहुँची। वह सुनकर आगबबूला हो गये और करुणाकर को बुलवाकर पूछे,

"मैं क्या सुन रहा हूँ ?"

"जो सत्य है।"

"यह कुलकलंकिनी कौन है ?"

करुणाकर का रक्त खौल उठा। परन्तु उसने संयम से काम लिया।"

"करुणामयी।"

"तुम्हारा विवाह तो लावण्य से हुआ था।"

"परन्तु द्विरागमन करुणा से।"

"क्यों ?"

"क्योंकि आपने पहले यही तय करके, बाद में गलती कर दी थी।"

"कदापि नहीं। मैंने पहले गलती की थी; बाद में कुण्डली द्वारा सुधार दी। तुम करुणा को अभी मेरे गृह से निकालो और लावण्य को बुलाओ।"

"ऐसा नहीं हो सकता।"

"तुम्हें भी घर छोड़ना पड़ेगा।"

"तैयार हूँ।"

"मैं कोर्ट में दावा करूँगा। लावण्य को वापस पाने के लिये। तुम्हें उसे रखना पड़ेगा।"

"कदापि नहीं।"

पिता को अपने पुत्र के इस कृत्य पर अत्यंत दुःख हुआ। उन्हें रातभर नींद नहीं आई। नाना प्रकार के विचार उनके मस्तिष्क को आक्रांत करते रहे—कैसा युग आ गया है ? इस सीमा तक अधर्म होगा ! लड़के-लड़कियाँ अपना विवाह अपने मन से करेंगे माँ-बाप की इस प्रकार अवहेलना करते। कल ही बिरादरी पहुँचेगी। वह साफ कहेगी, भगाई औरत को घर से निकाल दो। मैं उसका क्या उत्तर दूँगा ? यदि मैंने न निकाला, तब मैं भी समाज - बहिष्कृत हो जाऊँगा। करुणाकर अपना पुत्र है, उसे कैसे छोड़ूँ। वह धन, धर्म, समाज, गृह, माता, पिता सब कुछ छोड़ने को तैयार है, परन्तु अपनी चहेती को नहीं। घोर कलियुग आ गया है। अब वह सर्वस्व त्याग करने पर तुला हुआ है, तो मैं ही उससे क्यों सम्बन्ध रखूँ। जैसी उसकी टेक, वैसी मेरी। कैसे दुस्साहस का कार्य किया है उसने। दूसरे की स्त्री को घर में लाकर बिठा

प्रति जागरूक नहीं है, तभी तक यह दासता, अत्याचार और बन्दीजीवन है। वरना यह समाज की अर्द्धांग है। जब चाहे, इसे पंगु बना सकती है।"

"चलो कहीं दूर देश चलें, जहाँ स्वतंत्रतापूर्वक साँस ले सकें और दो समान आत्माओं का संयोग किसी की आँखों का शूल न बने।"

"नहीं-नहीं मैं यहीं रहूँगी। यह मेरा घर है, इसमें रहने का अधिकार है।"

"यदि पिताजी निकाल दें, तब ?"

"जहाँ कहोगे, चली चलूँगी।"

स्त्रियों के पेट में बात नहीं पचती। दूसरे दिन दिनकर की किरणों की भाँति रहस्यमय बात गाँव में व्याप्त हो गई। लोग जी खोलकर, नाना प्रकार से उपयोग करने लगे।

"घोर कलियुग आ गया !" एक ने कहा।

"मुँहजला, विवाहिता स्त्री को छोड़कर दूसरी भगा लाया।" दूसरी ने व्यंग किया।

"कलमुँही, अपना मर्द छोड़कर दूसरे के घर बैठ गई।" तीसरे ने आवाज कसी।

चिराग-तले ही अँधेरा होता है, बात गाँव-भर जान गया, परन्तु घरवाले बिना जाने ही रहे। फिर भी उड़ते-उड़ते बात करुणाकर के पिता के यहाँ पहुँची। वह सुनकर आगबबूला हो गये और करुणाकर को बुलवाकर पूछे,

"मैं क्या सुन रहा हूँ ?"

"जो सत्य है।"

"यह कुलकलंकिनी कौन है ?"

करुणाकर का रक्त खौल उठा। परन्तु उसने संयम से काम लिया।"

"करुणामयी।"

"तुम्हारा विवाह तो लावण्य से हुआ था।"

"परन्तु द्विरागमन करुणा से।"

"क्यों ?"

"क्योंकि आपने पहले यही तय करके, बाद में गलती कर दी थी।"

"कदापि नहीं। मैंने पहले गलती की थी; बाद में तुम्हारी द्वारा सुधार दी। तुम करुणा को अभी मेरे गृह से निकालो और लावण्य को बुलाओ।"

"ऐसा नहीं हो सकता।"

"तुम्हें भी घर छोड़ना पड़ेगा।"

"तैयार हूँ।"

"मैं कोर्ट में दावा करूँगा। लावण्य को वापस पाने के लिये। तुम्हें उसे रखना पड़ेगा।"

"कदापि नहीं।"

पिता को अपने पुत्र के इस कृत्य पर अत्यंत दुःख हुआ। उन्हें रातभर नींद नहीं आई। नाना प्रकार के विचार उनके मस्तिष्क को आक्रांत करते रहे—कैसा युग आ गया है ? इस सीमा तक अधर्म होगा ! लड़के-लड़कियाँ अपना विवाह अपने मन से करेंगे माँ-बाप की इस प्रकार अवहेलना करते। कल ही बिरादरी पहुँचेगी। वह साफ कहेगी, भगाई औरत को घर से निकाल दो। मैं उसका क्या उत्तर दूँगा ? यदि मैंने न निकाला, तब मैं भी समाज - बहिष्कृत हो जाऊँगा। करुणाकर अपना पुत्र है, उसे कैसे छोड़ूँ। वह धन, धर्म, समाज, गृह, माता, पिता सब कुछ छोडने को तैयार है, परन्तु अपनी चहेती को नहीं। घोर कलियुग आ गया है। जब वह सर्वस्व त्याग करने पर तुला हुआ है, तो मैं ही उससे क्यों सम्बन्ध रखूँ। जैसी उसकी टेक, वैसी मेरी। कैसे दुस्साहस का कार्य किया है उसने। दूसरे की स्त्री को घर में लाकर बिठा

ट्रेन आने में कितनी देर है ?"

पौन घंटे, क्योंकि आध घंटे लेट है।"

"इतने सवेरे घर छोड़ने का कारण ?"

"वही, जिसने तुम्हें यहां खींचा।"

"तुम्हारा इरादा ?"

"जो तुम्हारा।"

"खूब सोच लिया है।"

"अच्छी तरह।"

"समाज रोड़ अटकावेगा।"

"मुझे ऐसा समाज नहीं चाहिए, जहाँ कुण्डली के ग्रह जीवन संगिनी चुनें।"

"फिर इसका परिहार ?"

"हम लोगों द्वारा इस गलती का सुधार। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है।"

दोनों ने कुछ देर तक गुप्त मंत्रणा की। जब वे अपने गाँवों को लौटने के लिए बिदा हुए, तो उनकी मुख-मुद्राओं पर एक दृढ़ निश्चय चमक रहा था और भगवान् भास्कर अपने देदीप्यमान किरणों से संसार को आलोकित कर रहे थे।

× × ×

दूसरे दिन करुणामयी तथा लावण्य दोनों अपने-अपने पतिगृहों से अपने पितृगृह को बुला ली गईं, क्योंकि उनके परिवार में चचेरे भाई का विवाह, सप्ताह के भीतर ही, पड़ता था, और इन दोनों के द्विरागमन का शुभ मुहूर्त द्वितीय सप्ताहान्तर्गत। हिन्दू-समाज में, विशेषकर उत्तरी भारत में, विवाह के पश्चात् द्विरागमन-प्रथा का पालन विवाह से कम महत्त्व नहीं रखता। विवाहोपरान्त बहू की बिदाई के समय, इसके लिए शुभमुहूर्त का निर्णय कर लिया जाता है। कभी-कभी ता सायत वर्षों तक नहीं मिलती और कभी सप्ताहों के अन्दर

पड़ जाती है। करुणा और लावण्य की बिदाई में भी ऐसी ही अड़चन पड़ गई थी। अतः इस दोष का परिहार करने के लिए उसी दिन बिदाई करके दूसरे दिन वापस आना था।

करुणाकर तथा ललित भी अपने साले के विवाह-समारोह में सम्मिलित होने के लिए आये। विवाहोपरान्त पूर्वनिश्चयानुसार सातवें दिन करुणा तथा लावण्य का द्विरागमन करुणाकर तथा ललित ने करा लिया। उनकी ससुरालवाले पहाड़पुर स्टेशन से, पूरी पार्टी को ट्रेन पकड़ाकर, वापस चले गये। पहले कंचनपुर पड़ा। ललित अपनी अर्द्धाङ्गिनी के साथ उतर गया। तदनन्तर अग्निपुर आया और करुणाकर अपनी जीवन सहचरी के संग उतरा। गाँव की स्त्रियाँ बहू को देखने आईं। देखकर कुछ ने नाक-भौं सिकोड़ा। अन्य यह कहने में न हिचकिचायीं कि बहू सात दिनों में ही ऐसी बदल गई कि पहचानी नहीं जाती। नाना प्रकार के तर्क-कुतर्क करते वे वापस गईं।

रात्रि में, सबके भोजनोपरान्त, करुणाकर स्वयं अपने कमरे में आया। करुणामयी आनन्दातिरेक में खड़ी की खड़ी ही रह गई—एकटक उसकी ओर देखते। करुणाकर ने समीप स्थित होकर उसे सचेत किया। उसका ध्यान विकृत होते ही दोनों का मधुर मिलन हुआ। इसको निरख स्नेह-सिंचित दीपशिखा प्रसन्नता से लहरा उठी। कररूपी सरिता में दम्पति आनन्द की लहरें ले रहे थे। अचानक करुणाकर ने पूछा—

"करुणा !"

"कहो न।"

"कल तुम पहचान ली जाओगी।"

"हाँ, मैं जानती हूँ।"

"जाति अपमान को बरदाश्त नहीं कर पाओगी।"

"तुम भूल कर रहे हो। जब तक स्त्री अपने अधिकार के

अधार्मिक, असामाजिक तथा अप्राकृतिक ही नहीं सिद्ध किया, अपितु प्रतिवादियों पर गुण्डाशाही का आरोप लगाकर सजा देने तक की भी सिफारिश की। लोगों को पूर्ण विश्वास हो गया, इन पापियों को अपने दुष्कर्म का दण्ड अवश्य मिलेगा। प्रतिवादियों की ओर से कोई वकील नहीं था। कोर्ट के समक्ष ललित, लावण्यमयी, करुणाकर और करुणामयी ने निर्भीकता-पूर्वक लिखित संयुक्त वक्तव्य दिया :—

"हम वयस्क हैं। हमारे रूढ़िवादी अभिभावकों ने प्रथम बार हम लोगों का विवाह हमारे वर्तमान रूपों में ही करना निश्चित किया था, परन्तु उन लोगों ने ग्रहों के फेर में पड़कर प्रतिकूल कर दिया। इस प्रकार अपने जीवनों को विनष्ट होते देख, हमने अपने सद्प्रयत्न से ग्रहों को अनुकूल बना लिया और विवाह की भूल द्विरागमन में सुधार ली।"

पिता का दावा खारिज हो गया!

—:o:—

टिकट कट गया

किसी अवसर-विशेष पर टिकट कटाने में, टिकटेच्छुओं की जो दुर्गति और परेशानी टिकटघर की खिड़की पर उठानी पड़ती है, वह सर्वविदित है। चाहे वह अवसर रेल या बस द्वारा कुम्भ मेले का हो या ग्रहण-स्नान का; सिनेमा में नागिन फिल्म के प्रदर्शन का हो या संगीत-सम्मेलन में लता मंगेसकर के गायन का; दंगल में मगला राय की कुश्ती का हो या लायन सर्कस में उसके विशेष प्रोग्राम का; नाटक में कोरन्थियन के आँख की नशा का हो या प्रदर्शनी में भारत-सरकार द्वारा आयोजित वास्तु-कला के प्रदर्शन का; खेल में रूसी फुटबाल मैच का हो या एम० सी० सी० के क्रिकेट मैच का। यदि आप टिकटेच्छुओं के चक्रव्यूह से सर्कस के आर्टिस्ट की भाँति लोहे के सँकरे कड़े से शरीर को निवृत्त कर भी लें, तो अपना पाकेट और पानी तो नहीं ही बचा पावेंगे। ठीक ऐसी ही दशा आज दिन विधान तथा लोक-सभाओं के चुनावों में, देश की प्रमुख राजनीतिक पार्टी [illegible] टिकट पाने के निमित्त, टिकटेच्छुओं की हो रही है। इस [illegible] निमित्त कैसी-कैसी पैंतरेबाजियाँ, चालें और दाँव-पेच करने पड़ते हैं, बेचारे शर्मा से पूछिये। इसकी कहानी भी अजीब है।

मई का महीना था। लू के प्रचण्ड वेग से छोड़े तीक्ष्ण अग्नि-बाणों द्वारा वेधित तप्त धरा के असहाय प्राणियों को आकुल, छटपटाते तथा छिपने अवलोक, सहस्रांशु द्रवित

हु.कर, उसकी सहायता से मुँह मोड़ लिए थे। सहायक-विहीन वह स्वयं थकित होकर अपने प्रहारों की गति मन्द करती जा रही थी। उसका प्रकोप शमन होते ही शर्मा घर से निकला, परन्तु वह स्वयं क्रोधाग्नि से जल रहा था। रास्ते-भर वह सोचता चला जा रहा था—क्या मैं किसी का गुलाम हूँ कि जब चाहे वह मुझे बुला भेजे ? क्या मैं उन जानवरों से भी गया-बीता हूँ, जो इस लू के भय से अबतक छिपे पड़े हैं और बाहर निकलने का नाम नहीं लेते ? दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँककर पीता है। गत बार का धोका खाया हूँ। मुझे दूध की मक्खी की भाँति फेंक दिया गया और विधान-सभा की सदस्यता का टिकट इन बुड्ढों ने आपस में बटवारा कर लिया। आज अपनी वार्ता कराकर दम लूँगा। मैं जानता हूँ कि शुक्ल किस लिए बुला रहा है ? बच्चू को छटठी का दूध याद न करा दिया, तो मेरा नाम नहीं ! इसी मूड में वह बीच सड़क से बढ़ता जा रहा था कि बगल से पास हो रही कार के हार्न ने उसका ध्यान शुक्ल के बँगले के समक्ष खिंचन किया। वह मेन गेट से लान को पार करते हुए धड़धड़ाते उनके कक्ष में प्रवेश किया और रुक्षता से पूछा, "मेरी अनिवार्य उपस्थिति का कारण ?"

"मंडल का चुनाव दरवाजे पर गरज रहा है और आप कान में तेल डाले पड़े हैं" ! वृद्ध शुक्ल ने अपने नाक की ऐनक ठीक करते उसकी भर्त्सना की और समक्ष रखी कुर्सी पर बैठने का इशारा किया।

"यदि बात इतनी ही थी, तो सन्देशवाहक से कहला दिए होते। मैं इत्मीनान से आता।"

"राजनीति में फूँक-फूँक कर कदम रखना पड़ता है क्योंकि दीवाल के भी कान होते हैं। आपकी मुँझलाहट का कारण ?"

"गत वर्ष मैं बाजी मार ले गया था। परन्तु इस बार दाल नहीं गल रही है।"

"पारसाल आपमें कौन-सा सुरखाब का पर लगा था ?"

"मन्त्री के आड़े वक्त काम आया। वह मेरा चुनाव निर्विरोध करा दिए।"

"इस साल क्यों चूक रहे हैं ? वही नुस्खा आजमाइये।"

"बुढ़िया क्या मरी, यम परक गये ! उनके मुँह खून लग गया है।"

"यों भी तो आपके चार-पाँच सौ गल जाते कर्मठ तथा प्रारम्भिक सदस्य बनाने में। यदि चुनाव लड़ेंगे, तो हजारों का वारा-न्यारा हो जायगा। उनकी मदद कम खर्च वाला नहीं साबित होगी।"

"अब तो हाथी के दाँत बाहर आ गये, कुछ नहीं होने का।"

"यह आपकी भूल है। निरन्तर प्रयत्न करना मनुष्य का कर्तव्य है। पारसाल इसी चुनाव में मुझे चार सौ की कीमत पर फतह हासिल हुई थी। इस साल अब तक पांच नम्बरी तुड़ा चुका, विजय संदिग्ध-सी है; परन्तु आखिर दम तक लड़ूँगा।"

"सट्टा तो पड़ा, इसीलिए आप नवयुवकों के ईर्ष्या-पात्र हो रहे हैं। अब जिस मूल्य पर हो, चुनाव जीतना है।"

"हाँ शर्मा, यदि मेजारिटी न रही, तो विधान-सभा तथा संसद के चुनाव का टिकट पाना दुष्प्राप्य-सा हो जायगा।"

"आप तो गत दो सत्रों से एमेले हैं ही, अब भी हविस बाकी है ? दूसरों को मौका दीजिए।"

"नवागन्तुकों को तो चार वर्ष, उठने-बैठने और बोलने-चालने के रंग-ढंग समझने और सीखने में लग जाते हैं,

कार्य करना तो दूर रहा। अतः अनुभवी सदस्यों का जाना ही श्रेयस्कर है, जो वहाँ कुछ कह और कर सकें।"

"जमाने की हवा तेजी से बदल रही है—इसके रुख के साथ चलना ही लाभदायक है। जैसे आधुनिक केंचुआ-छन्द की तुलना में तीन सौ वर्ष पुराने पद्यों का कोई मूल्य नहीं, उसी प्रकार युवकों के सामने वृद्धों का।"

"राजनीति का तो यह सिद्धान्त ही है कि 'जैसी बहे बयार पीठ तब तैसी कीजै।' कल जनरुचि साम्राज्यवादी थी, कुछ दिन कांग्रेसवादी रही, आज समाजवादी है, आगे साम्यवादी होगी।"

अपनी बात कटते देख शर्मा झुँझलाहट की सीमा पार कर अशिष्टता पर उतारू हो गया और बोला, "विधान-सभा की सदस्यता के गत चुनावों में प्रथम बार तो आप पुराने कार्यकर्ता के नाते बटेर मारकर शिकारी बन गए, परन्तु दूसरे में किस छीछालेदर के साथ आपको टिकट मिला, वह स्मरण है? पार्लियामेंटरी बोर्ड के समक्ष त्रिपाठी ने आपका एक कर्म नहीं छोड़ा!"

शुक्ल के भाल की रेखाओं पर बल पड़ गया, भृकुटी कुटिल हुई; परन्तु आँखों में वह लाली नहीं आई जो एक उत्तरा रखवाले को ऐसे अवसर पर आ जाती है। फिर उन्होंने विचार किया, यदि जबानी जमा-खर्च में कोताही हुई, तो मेरा कहीं ठिकाना नहीं लगेगा। शुक्ल ने उसी टोन में उत्तर दिया, "मैंने भी उनकी करनी के चिथड़े-चिथड़े उड़ा दिये थे।"

"परन्तु त्रिपाठी ने आप पर जो कीचड़ उछाला, उससे तो वास्तव में आप गमले के योग्य नहीं हैं।"

"दूसरों की फूली सब निहारते हैं, अपना ढेंढर कोई नहीं

देखता ! आप भी तो अखाड़े में वहीं मौजूद ही थे। देखा, मैंने भी कैसे उनकी ईंट का जवाब पत्थर से दिया !"

"आपके कारनामों से पूर्ण क्षेत्र अवगत हो गया है। क्या कंट्रोल के जमाने में आपने कई दूकानें लेकर ब्लैक मारकेटिंग नहीं किया था ?"

"परन्तु त्रिपाठी पर तो फर्जी परमिटों के लेने का मुकदमा तक चल चुका था।"

"क्या यह छिपी बात है कि आपने कई भागीदारों के साथ ट्रक का परमिट लेकर स्वयं हथिया नहीं लिया ? कई सार्वजनिक एवं सरकारी संस्थाओं के अध्यक्ष रहकर, वहाँ अपने अधिकारों का दुरुपयोग करके उनकी चल तथा अचल सम्पत्ति पर अपना स्थायी अधिकार प्राप्त नहीं कर लिया ? एक ही यात्रा के लिये कई संस्थाओं से यात्रा-व्यय नहीं लिया ?"

"वह तो चोरों को प्रश्रय देता है, बन्दूकें देता है और उनकी जमानतें करता है।"

"परन्तु आप तो ऐसे मामलों में वकालत द्वारा हाकिम की कलम पकड़कर छुड़ानेवाले की उपाधि पा गये हैं।"

"उसने तो कन्ज्यूमर्स सोसाइटी का भट्ठा लगवाकर सारी ईंटें हड़प लिया उन्हें कच्ची साबित करके !"

"परन्तु आपका गृह तो इस तथ्य को स्वयंसिद्ध हो रहा है। इसलिये कि आपने ईंदन द्वारा भट्ठे लगवाये गये खेत के मालिक से, अपने ऊपर फर्जी मुकदमा चलवाकर, अपना भट्ठा साबित कर लिया था।"

"मैंने तो उस वेश्या से गवाही दिलवा दी थी, जिसे वह रखे थे।"

"आप कौन दूध के धोये हैं ? आप भी तो कभी रास-

मण्डली के संस्थापक थे ।"

"पार्ल्यामैन्टरी बोर्ड दंग रह गया था, जब मैंने होटल-वालों को शराब की बकाया बिलें पेश कर दी थीं, जिनसे त्रिपाठी उधार लिए थे ।"

"वे भी तो आपके विरुद्ध रधिया द्वारा चलाये गये गुजारे वाले मामले के सबूत पेश किए थे ।"

"आप ऐसे व्यक्ति की ओर से बोल रहे हैं, जिसने मंत्री होकर कितनी सार्वजनिक संस्थाओं, सेवासंघों में तथा सम्मेलनों का धन उदरस्थ कर लिया है और डकारता तक नहीं ।"

"आपके हाथ कौन साफ हैं ? बाढ़पीड़ितों के अन्न, वस्त्र तथा चर्खा बांटने के लिए आई हुई सहायता में से कुछ को ओस चटाकर, सारी पी गये ।"

"आप किसलिये इस प्रकार मुझसे मुठभेड़ कर रहे हैं ?"

"मैं चाहता हूँ, आप इस बार बैठ जायं । एमेले का टिकट इस क्षेत्र से मुझे मिलने दें ।"

"इसका प्रश्न ही अभी कहाँ उठता है ? डी० सी० सी० के चुनाव के बाद इसका निर्णय होगा ।"

"मैं तो आपसे निपट लेना चाहता हूँ ।"

"परन्तु आप तो कम पढ़े-लिखे हैं ।"

"वहाँ सिपाहियों की जरूरत है, आपकी तरह नहीं, जो पार्टी के विरुद्ध भाषण करें । इसके अतिरिक्त पढ़ाई-लिखाई की योग्यता से क्या सम्बन्ध है ? अकबर भी कम पढ़ा-लिखा था । फिर भी बावजूद मेरे प्रयत्न के, हाई स्कूल सरिता पार न कराने का दोषी शिक्षा-विभाग है । मैंने पार्टी का कभी कोई विरोध नहीं किया ।"

"पढ़े-लिखे या तो अपनी गलती स्वीकार ही नहीं करते या

उनकी स्मरण-शक्ति खराब हो जाती है।"

"सरासर गलत, आप व्यर्थ का दोषारोपण कर रहे हैं।"

"जब सातवीं बार आपने पार्टी की अवहेलना की, तो अनुशासनहीनता की कारवाई करने पर ही आपकी जबान पर ताला लगा।"

"क्यों बकवास बढ़ा रहे हैं ? आप खड़े होइये। त्रिपाठी भी तो कम पढ़े-लिखे थे, उनको गत बार टिकट मिल गया था, इस बार आपको भी मिल जयगा।"

"मैं तो खड़ा हूँगा ही, परन्तु आपको नहीं होने दूंगा।"

शुक्ल ने सोचा, इस अन्धे के आगे रोना अपना दीदा खोना है। इसके अतिरिक्त 'नंगा खुदा से बड़ा' इसको मुँह लगाना अपनी हेठी कराना है। जो गुड़ देने से मरे, उसे विष क्यों दिया जाय ? अतः उन्होंने वह रामबाण छोड़ा जिससे एक उद्दंड, अधिकार-लोलुप बच नहीं सकता। वह मुसकराते बोले,

"आप मेरे रास्ते में रोड़ा न अटकाइये, मैं आपको दूसरी सीट दिलवा दूंगा। इसे तो आप अस्वीकार नहीं कर सकते कि ऊपर मेरा इतना हाथ अवश्य है कि जिसे चाहूं, टिकट दिलवा दूं।"

"मैं अपनी पीठ पर किसी प्रकार आपका वरद हस्त चाहता था, वह पा गया।"

"आपके प्रति मैंने अबतक जो कुछ कहा है, उसके लिये घोर दुःख है, अतः क्षमाप्रार्थी हूं।"

"बालक अपने पिता के शरीर पर मल-त्याग कर दे, तो वह उसे काट नहीं देता। आप निश्चिन्त रहिये।"

"नहीं, मुझे क्षमा कीजिये।"

"अच्छा भाई, किया। आप नवयुवक हैं, आपका रक्त उष्ण है। यदि ठंडे रक्तवाले न रहें, तो राजनीति का संतुलन

ही खो जाय प्रेम तथा राजनीति में उचितानुचित समान है ’

“मेरे योग्य आदेश ।”

“इस समय जैसे हो, डी० सी० सी० में बहुमत कायम करना है। आपमें कार्य करने की बहुमुखी क्षमता है। आपकी भाईचारे वाली चाल तो कारगर होके रहेगी ।”

“हम लोगों की पार्टी तो आ ही रही है। अस्थाना, वर्मा, गुप्त, शाही, सबके सब मुँह की खायेंगे। परन्तु मेरी जीत संदिग्ध है ।”

“सन्दिग्ध—आप तो बैठे-बिठाये हो रहे हैं। राजनीति में मोल-भाव करते-करते सौदा पट ही जाता है। मंत्री इस बार भी आपका काम करेगा ।”

“लक्षण नहीं प्रतीत होते ।”

“हजारों को मुआफिक करने से एक का करना आसान है। साँप भी मर जायगा, लाठी भी न टूटेगी ।”

“यही होगा। कहावत है, नवयुवकों की बारात में सम्भालने के लिए बड़े-बूढ़ों को झपोली में बन्द करके ले जाया जाता था ।” यह कहते शर्मा उठा और कमरे से बाहर निकला। शुक्लजी उसको विदा करते बोले, “यही नहीं, और होगा। बहुमत होते ही तुम मेरे मन्त्री होगे। टिकट तो अनिवार्य है ।”

यह ऐसा अणु बम था, जो किसी भी राजनीतिक उच्छृङ्खल पर शान्ति ही नहीं अधिकार पाने के निमित्त भी पर्याप्त था।

“आज [illegible] मेरे गुरू हुए ।” यह कहते शर्मा ने शुक्ल का पैर पकड़ लिया ।

“पैर छोड़ो, यह कैसी नादानी कर रहे हो ! देखो, मंत्री इधर ही आता दिखाई पड़ रहा है। यदि उसकी गृद्ध-दृष्टि इधर पड़ी, तो बना-बनाया खेल चौपट हो जायगा ।”

“वह तो होटल की ओर मुड़ता नजर आ रहा है ।” शर्मा ने पैर पर से हाथ हटाते उत्तर दिया ।

"यह तुम्हारे लिए सुनहला मौका है।" अवसर का चूका मनुष्य और डाल का चूका बन्दर धराशायी होते हैं। शुभस्य शीघ्रम।"

"मूल-मन्त्र मुझे मालुम है, सिद्धि चाहिए, साधन कैसा हू हो। आपका आशीर्वाद बरबस सफलता खींच लायेगा।" यह कहते शर्मा अपनी धुन में तेजी से मन्त्री तथा अपने बीच की दूरी कम करने लगा।

मन्त्री ने होटल की सीढ़ी पर पैर रखते एक बार चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, जो शर्मा पर जाकर टिकी। शर्मा ने हाथ उठाते नमस्ते किया। इसकी अवहेलना करते मन्त्री ने होटल में प्रवेश किया, यह सोचते हुए कि वह तो बिना बुलाए आएगा। एक कुर्सी ने शास्त्री को अपने ऊपर आसीन कर लिया। शर्मा के प्रवेश करते ही शास्त्री ने चाय तथा टोस्ट का आर्डर दिया। शर्मा भी समच्छ ही उसी टेबुल पर बैठ गया और शास्त्रीजी को पुनः नमस्ते करते उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया।

लोहे को गर्म जान उन्होंने हथौड़ा मारा, "आप ही बाहर से नमस्ते कर रहे थे? मैंने खयाल नहीं किया।"

"हाँ, सेवक ही था।"

"बेयरा! टी और टोस्ट और लाओ।" मन्त्री ने आदेश दिया।

"आप मँगवाकर मुझे लज्जित कर रहे हैं। यह तो सेवक का धर्म है।"

"मेरा तथा आपका पैसा क्या बँटा है? अभी तो हम लोग कुछ खाये-पीये नहीं कि आप हिसाब करने लगे। इसका प्रश्न तो बाद में उठता है।"

टोस्ट, मक्खन तथा केक के साथ चाय का दौर चलता रहा। मन्त्रीजी बढ़-बढ़कर हाथ मारते शर्मा को प्रोत्साहन

देते जा रहे थे, परन्तु उसने केवल फर्ज-अदाई ही की जलपान समाप्त होते ही बेयरे ने तश्तरी में पाँच रुपये का बिल प्रस्तुत किया, जिसे देखते ही शर्माजी के हाथों ने जीर्ण शीर्ण खद्दरवाले पर्स को खोलने का उपक्रम किया ही था कि शर्मा के पाकेट द्वारा बिल भुगतान कर दी गई।

"अब आप कहाँ जाइयेगा ?" मन्त्री ने उठते पूछा।

"जहाँ आप।"

"मैं तो शहर जा रहा हूँ।"

"तब साथ ही चलूँगा।"

"सुना है, आप इस साल डी० सी० सी० की सदस्यता से संन्यास ले रहे हैं।"

"भला दाई से पेट छिपता है ? मैं तो पूर्णरूपेण मैदान में हूँ।"

"गतिशीलता दृष्टिगोचर नहीं होती।" शास्त्री ने पुनः नाड़ी टटोली।

"यदि आपकी कृपाकोर इस बार भी हो जाती, तो बैठे-बिठाये मैदान मार लेता।"

"मैंने कब आपका साथ छोड़ा है ? परन्तु आपकी नींद ने आपके जगाने को मुझे विवश किया।

"प्रारम्भ में मैंने आपसे कई बार छेड़ा, परन्तु आपका रुख न मिलने पर निरुत्साह हो गया।"

"समय ही सब काम कराता है। असमय पर दौड़ना और समय पर हाथ रखकर बैठना, मूर्खता ही नहीं, महान् कायरता है। आज संसार पारस्परिक सहयोग-विनिमय द्वारा ही संचालित हो रहा है।"

"हाँ, मेरी भूल थी। कभी नहीं से तो विलम्ब से आना ही श्रेयस्कर है।"

"क्या कहूँ शर्माजी, मैं आजकल बड़े धर्म संकट में पड़ गया

हूँ । बहन की शादी सर पर नाच रही है, परन्तु कपड़ों का प्रबन्ध अबतक न हो सका।" कहते शास्त्री ने सेठ भंडारीमल की दूकान में प्रवेश किया। वहाँ गर्मी को नाम तक न था। कई विद्युत-पंखे, बस शीत-ताप-नियंत्रित एवं आधुनिक साधनों से सुसज्जित विशाल दूकान में चल रहे थे। एक हाथ ऊँची गद्दी पर दूनी मोटी मसनद के सहारे सेठ बैठे थे। सेठ की लटकती तोंद ने उनकी कमर को परिवेष्ठित कर ली थी। उनका अधिक मांसल शरीर बीभत्सता धारण कर लिए था। हस्त-पाद फीलपाव के रोगी के सदृश्य मोटे थे, जिनमें केहुनी तथा घुटने अदृश्य थे। उँगलियाँ कठिनाई से दृष्टिगोचर होती थीं। मुखाकृति मांस के पिंड से आवरित थी। चक्षु, नासिका, मुख-विवर अलक्षित-से थे। इनके विद्रूप तन को देखकर ज्ञात होता था, जैसे अगणित अस्थिचर्मावशिष्ट शरीरों के भाग का रक्त-मांस समेटकर इन्होंने इसमें ही भर लिया है। समय की गति के साथ, निरर्थक लदा मांस अब स्वयं उनके शरीर से सम्बन्ध-विच्छिन्न करता जा रहा था। मन्त्री को नजरअन्दाज करते, उन्होंने शर्मा का स्वागत किया। और कहा,

"क्या-क्या हाजिर करूँ ?"

"विवाह के सम्बन्ध में कुछ कपड़े लेने हैं।" मन्त्री ने उत्तर दिया।

सेठ ने मुनीम द्वारा एकलाइयाँ, चादरें, छींट, धोतियाँ निकलवाकर रख दिया। चार सौ रुपये के कपड़े शास्त्री ने पसन्द कर बन्डल बाँधने का इशारा किया। सेठ ने बँधवा कर पुर्जा सामने रखवा दिया।

मन्त्री ने एक बार पर्स, पाकेट तथा टेट टोया और चारों ओर दृष्टि घुमाकर शर्मा पर जमा दिया।

"सेठजी, आप मेरे खाते में लिख लीजिए, पैसा आ जायगा।" शर्मा ने कहा।

"बाबूजी, पैसों की ऐसी क्या पड़ी है ? आते रहेंगे। मन्त्री-जी कोई गैर थोड़े है ? परन्तु आपकी खातिर आपके नाम चढ़ा लेता हूँ।"

"हाँ-हाँ, अभी।"

सेठ अपने पैसों की सुरक्षा देख बोला, "इतने कपड़े तो मामूली आदमियों की शादी में लग जाते हैं, कहें, तो हजार-पाँच सौ के और दे दूं।" यह कहते सेठ ने मुनीब से नई डिजाइन की साड़ियों और चादरों को निकलवाया।

इनकी कलापूर्ण सुन्दरता देख मन्त्री के मुंह में पानी भर आया। उन्होंने दो सौ की एक साड़ी और चादर पुनः लिया।

"शर्माजी, अब मैं कुछ अन्य कार्यवश जा रहा हूँ। आपने लाद दिया, लदवा दिया, अब मेरे घर पहुँचवा दीजिये।" शास्त्री आदेश देते चले गये।

शर्मा रिक्शे पर बण्डल लादे मन्त्री के घर पहुँचा। भगवान् भास्कर को अबतक रात्रि के ठण्डे परदे की ओट हुए अभी कुछ ही देर हुए थे। शास्त्री की सहधर्मिणी घर का दरवाजा खोले, आँगन में, सड़क के सामने ही, खाट पर अपने मांसल शरीर के ऊपरी अर्द्धभाग को वस्त्रों से विस्थापित किए पलँग पर पड़ी पंखा झल रही थीं। उनका किताबी चेहरा तथा खुला अंग प्रत्येक मार्गचारी के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। सामने रिक्शे को खड़ा होते देख वह उठी, और अपने पृष्ठ भाग को लम्बी, कृष्ण कुन्तल-राशि तथा उरोज-गिरि-शृङ्गों को अंचल से ढँकने का प्रयत्न करते, दरवाजे पर आ धमकी। और शर्मा को कपड़ों का बण्डल उतारते देख व्यंग्य छोड़ी, "शर्माजी, आप हैं ! आज इधर कैसे भूल पड़े ? क्या केशिनी के केशपाश से मुक्त हो गए ?"

"किसके--कुमारी केशिनी एम० ए०, एल० टी०, प्रधानाचार्या के ? उनका नाम मेरे कर्ण-कुहरों से अवश्य सम्बन्धित है।"

"मेरी आँखें एक नहीं, अनेक बार की साक्षी हैं। परन्तु मैंने आप लोगों के हलवे में कंकड़ी बनना अनुचित समझा।"

"स्त्रियों का लाञ्छन लगाना स्वभाव है।"

"कदापि नहीं, हाथ कंगन को आरसी क्या ?"

"तब क्या पुरुषों की गति-विधि का निरीक्षण करना ही उनका एकमात्र धर्म है ?"

"अपने को पराए होते देख दुःख ही नहीं, ईर्ष्या भी होती है।"

"अतः वनिता-विधान में किसी से मिलना-जुलना भी अपराध है ?"

"मित्रता जीर्ण वस्त्र नहीं होती।"

"उनके कालेज में ऐडमिशन के सम्बन्ध में अक्सर जाना पड़ता था।"

"क्या प्रवेश वर्ष में कई बार होता है ?"

"नहीं, कुछ झंझट पड़ गई थी।"

"मुझे विश्वास नहीं होता।"

"अब तो मैं स्वयं उपस्थित हूँ।"

"ये कपड़े कैसे हैं ?" अपने वक्षःस्थल के खिसकते अंचल को सम्भालते बोली।

"शर्माजी ने भेजा है।"

"रुपये कहाँ से पा गये ?"

"क्या हिसाब नहीं देते ?"

"उनकी क्या हस्ती ? परन्तु इसमें आपके सहयोग की गंध आ रही है"

"मै इस योग्य कहाँ ? "

"क्या कहूँ, कहत जमीन मे गड़ी जा रही हूँ । आपसे तो मेरे गृह-जीवन का भीतरी-बाहरी कोई अंग नहीं छिपा है ? वह शर्मा से सटकर खड़ी हो गई।"

"इसकी झाँकी कराने का श्रेय आपही के सर है। अब भी आगे ही हूँ।"

"ननद के हाथ पीले करने हैं, थोड़े से रुपये से हो जायँगे।"

रायबहादुर का इकलौता पुत्र तथा प्रचुर धनराशि करतल-गत होते हुए भी शर्मा उद्धत स्वभाव का अवश्य था, परन्तु दिल का साफ और खुशामदपसन्द। वह मौके पर कम और बेमौके अधिक खर्च करने से सदा हिचकता था। कैसी बला मे आ फँसा ? इससे तो बेहतर था, पाँच सौ रुपये का सदस्य ही बना लेता। परन्तु जल्दी का काम शैतान का। उसने पुनः विचार किया, मतदाताओं के लाने, खिलाने तथा चुनाव प्रचार आदि में इससे दूना बिगड़ जायगा। यदि दो सौ रुपयों तक मानिनी मान जाती है, तो दोनों हाथ लड्डू रहेंगे। फिर भी उसने नाड़ी टटोली, "क्या कहें, आजकल हाथ खाली हैं। जमींदारी चली ही गई, जो हमारी काम-धेनु थी।"

"राजा के घर मोतियों का अकाल ?"

"आप मन्त्री की अर्द्धांगिनी होकर, अब भी राजाओं का नाम ले रही हैं ? वो तो कब के रसातल पहुँच गए।" पार्ल्या-मेटरी-पटुता से शर्मा ने निरुत्तर किया।

"आपके खजाने में आठों पहर घी के दिए जलते हैं।"

"दुनिया एक का हजार आँकती है।"

"फिर भी कितने से काम निकल जायगा ?"

"चार सौ से मजे में"

"सौ से ही चलाइए। गृह-निर्माण तथा विवाह में हाथ नहीं रुक सकते ?"

"तब दो सौ ही दीजिए।"

शर्मा ने तत्काल दो नम्बरी नोट उनके हवाले किया। अनुगृहीत शास्त्रिणी उसे कर-पाश में आबद्ध करना चाहीं, परन्तु शर्मा ने हाथ झटकते डाँटा, "यह क्या कर रही हैं! उधर देखिए, मन्त्रीजी आ रहे हैं।"

"सुनिये, सुनिये, मंत्रीजी क्या करेंगे ? वह सब जानते हैं कि घर क. नाव कैसे चलती है ? फिर भी आप नये तो हैं नहीं।"

"वह जाना करें, परन्तु आज तक सामना तो नहीं हुआ।" उत्तर देते सर पर पैर रखे शर्मा भागा।

"कौन था ?" आते ही शास्त्री ने पत्नी से पूछा।

"शर्माजी।"

"बेचारे ने अपना पूर्ण हाथ बढ़ाकर मेरा अवसर रखा है। उसे चुनाव जिताकर डी० सी० सी० में भेजना है।"

"जरूर भेजिये। आपके ही नहीं, मेरे तो हर काम में, वह अपने आदमी की तरह, सक्रिय सहयोग देता है।"

निर्धारित तिथि पर चुनाव के लिये आये उम्मीदवारों के प्रार्थनापत्रों में से मन्त्री ने, शर्मा के प्रतिद्वन्द्वियों का पर्चा खारिज करा दिया, इस आधार पर कि वे उपस्थित नहीं थे। उन्होंने आपत्तियाँ पेश कीं कि सूचना देर में मिली और उपस्थिति में विलम्ब केवल एक घण्टे का हुआ था। परन्तु शास्त्री की एक घुड़की ने उनके होश ठिकाने कर दिये कि उस क्षेत्र के मतदाताओं की सूची आपादमस्तक विवाद-ग्रस्त है। इसकी छान-बीन होगी। इस भय से वे दबे-पाँव तत्काल खिसक गये। परन्तु आपत्तियों को चुपके दूसरे दिन दाखिल कर दिये।

इस प्रकार शर्मा तो निर्विरोध हो गया, परन्तु अन्य स्थानों पर काफी चख-चख रही। होली के नाटकीय ढंग से नियत तिथि पर चुनाव सम्पन्न हो गया। दूसरे दिन शुक्ल, सूर्योदय के एक घन्टे पश्चात, अपनी भाग्योदय के निमित्त पहलेपहल शर्मा के यहाँ पहुंचा, क्योंकि उसे वह लुढ़कने वाला पत्थर समझता था। शर्मा अपने आधुनिक ढंग से सुसज्जित बैठक में, सोफा पर बैठे, सामने रखे टेबुल पर पैर फैलाए सिगरेट पीते 'आज' पढ़ रहा था कि शुक्ल की चापों की ध्वनि से उसका ध्यान विक्षत हुआ। वह सोफा छोड़कर उठा और सइयाँ भए कोतवाल की प्रसन्नता के साथ दरवाजे तक आकर उनका स्वागत किया और दूसरे सोफा पर उन्हें बैठाते वह बोला, "अब तो हम लोगों का विजातीयता-विहीन विशुद्ध बहुमत हो गया।"

"केवल शब्दों में, परन्तु वास्तव में तीन कनौजिया तेरह चूल्हा बन गया।"

"आप भी ऐसा कह रहे हैं?"

"कहना पड़ता है इसलिए कि वे ढेर योगी, मठ का उजाड़ वाली कहावत चरितार्थ करेंगे; अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग अलापकर।"

"गुरू तो आप हैं ही, उनकी शिक्षा-दीक्षा तथा नियंत्रण के निमित्त।"

"हाँ, मैं अपना उल्लू सीधा कर लूँगा। परन्तु इस अवसर पर आपका एक चुप्प सौ को हरावेगा। आपको स्मरण है, मैंने आपसे पक्का वादा किया है। आपने जातीयता की व्यूह-रचना कर जो सफलता प्राप्त की, वह सराहनीय है।" शुक्ल ने शर्मा की पीठ ठोंकते कहा।

राजनीति का ककहरा पढ़ा बेचारा शर्मा क्या जाने कि राजनीति में वादे का कोई मूल्य नहीं होता।

"मैंने आपके हाथ अपना भविष्य छोड़ दिया है।"

"मेरी अध्यक्षता में आप मेरे मन्त्री होकर रहेंगे। टिकट की क्या बिसात है?" शुक्ल ने मेज पर मुष्टि-प्रहार करते दुहराया।

"आपकी पदोन्नति में ही मेरा कल्याण है।" शुक्ल शर्मा की ओर से निर्भय होकर उठ ही रहा था कि जलपान उपस्थित हो गया। इसी समय शास्त्रीजी धड़धड़ाते आ धमके और सोफा पर आसीन होते अपने गंजे सिर को बायें हाथ से खुजलाते बोले, "बड़े अच्छे मौके से पहुँचा; आजके सारे दिन मेरी पौ बारह रहेगी।" और दायें हाथ से शर्माके आगे का रखा जलपान खींचकर, "लेन-देन और खान-पान में लज्जा-त्याग सुखदायी होता है।" का सिद्धान्त उन्होंने प्रतिपादित किया।

"शर्माजी से राजनीतिक स्तर पर विचार-विनिमय हुआ था?" शास्त्री ने शुक्ल को छेड़ा।

"आपने अपने ऊपर रिस्क उठाकर इनको डी० सी० सी० का सदस्य बनाया, यह उसी का गुण-गान कर रहे थे।" शुक्ल ने उत्तर दिया।

"इनकी क्या कहूं, आपके क्षेत्र में तो मैंने शाही से रार मोल लेकर; जीप-सहित साथियों की पूरी फौज उतार दिया था।"

"हम तीनों में तो दाँत-काटी रोटी का सम्बन्ध है। परन्तु यह अवसर सहयोग करने का है, न कि एक दूसरेपर एहसान जताने का" शुक्ल ने स्पष्ट किया। परन्तु भौं पर बल लाए बिना मन ही मन कहा, "इस प्रकार खर्च करने का बदला सूद समेत लूँगा।"

"यह अक्षरश: सत्य है ताली एक हाथ से नहीं बजती। अत: इस अवसर पर आप लोगों के कान में डाले बिना नहीं रह सकता कि मैं संसद की सदस्यता का उम्मीदवार हूं।"

"हम लोग साथ हैं, परन्तु मैं डी० सी० सी० का अध्यक्ष बना रहना चाहता हूं।"

"आप तो कई वर्षों तक इसके अध्यक्ष, विधान-सभा के सदस्य और अन्य संस्थाओं के सभापति रहे हैं! इस बार बेचारे त्रिपाठी को चांस दीजिये।"

"त्रिपाठी के साथ कितने सदस्य हैं? वह नाममात्र को पढ़े-लिखे हैं। गत बार उन्होंने मेरी बड़ी शिकायत की थी पार्लिआमेंटरी बोर्ड के समक्ष। बड़ी कठिनाई से मुझे विधान-सभा की सदस्यता का टिकट मिला।"

"आधे से अधिक सदस्य उनको चाहते हैं। परन्तु आपने भी तो वहां उनकी बखिया उधेड़ दी थी।"

"मन्त्री कौन रहेगा?"

"मैं बदस्तूर।"

"आपके साथ कौन-कौन हैं?"

"तीन तो हम यही हैं और त्रिपाठी अपनी पार्टी-सहित।"

"शर्मा भी एम० पी० का टिकट चाहते हैं।" शुक्ल ने भेद-नीति बरती।

"अभी यह नये हैं। सारी उम्र सामने पड़ी है। सीढ़ी-सीढ़ी इन्हें चढ़ना चाहिए।"

शर्मा के मुंह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। काइयाँ शास्त्री भाँप गया। जलपान पर ही दोपहर के भोजन की कसर निकालते उसने बड़े जोर से डकारा और आगे अधिक की अनिच्छा प्रकट करते सोफा से उठा और शर्मा को आश्वासन दिया, "शर्मांजी का नमक अभी हम लोग खाए हैं। इसको शाश्वित देना हमारा धर्म है, हम तीनों साथ हैं।"

शर्मा इस पम्पिंग से गुब्बारे की भाँति फूल उठा। पिता का रक्त उसमें प्रवाहित हो रहा था जो।

शुक्ल और शास्त्री दोनों बैठक से बाहर निकले। शर्मा भी उनके साथ पहुंचाने चला। परन्तु इन्होंने उसे वापस कर दिया। चुपचाप कुछ दूर आगे बढ़ने पर इधर-उधर ताककर शुक्ल ने टोका,

"आप मंत्री बने रहें और मैं अध्यक्ष।"

"हाँ, ठीक है, परन्तु आप शर्मा के लिए क्यों इतना व्यग्र हैं ? पद के लोभ से ही वह हम लोगों का साथ दे रहा है। पा जाने पर हाथ से निकल जायगा। तिल के पेरने से ही तेल निकलता है। हम लोगों का हाथ-पैर उसी के बल पर चलता है और डी० सी० सी० का दीपक भी वही जला रहा है।"

"जैसे आपने उसका बातों से पेट भरा, उसी प्रकार मैंने भी!"

"यही समय की पुकार है।"

दोनों एक दूसरे को समझ रहे थे। ठठेरे ठठेरे बदलौअल नहीं होती। परन्तु वचन से वे कर रहे थे।

शुक्ल को उनके बंगले पहुँचाकर शास्त्री अपने घर वापस आया। उसे आत्मविश्वास था, मैं आगे बढ़ूंगा, नीचे से नहीं तो ऊपर से अवश्य ही। शुक्ल को दिनभर व्यग्रता रही'—कल ही डी० सी० सी० के अध्यक्ष का चुनाव है। तदनंतर संसद तथा विधान-सभा की सदस्यता के टिकट बँटेंगे। यदि इस बार सफलता मिल जाती, तो मेरे छूट-फटके काम पूरे हो जाते। मिनिस्टरी का पूरा चान्स है।

विदेश-भ्रमण की लालसा पूरी हो जाती और लड़के-लड़कियों का जीवन बात की बात में सेटिल हो जाता। वह जानते थे, राजनीति शतरंज का खेल है। चाल और बाजी इसके अंग। चाल सही, तो प्यादा से फर्जी हो जाता है, वरना बादशाह कैद और बाजी मात। वह दिन-भर गोटी बैठाते

रहे। शर्मा पर उन्हें पूर्ण विश्वास जम गया था। शास्त्री और मैं एक ही घाट के पानी पीनेवाले हैं। अतः दोनों एक दूसरे से सतर्क हैं। त्रिपाठी के साथ अवश्य कुछ सदस्य हैं, परन्तु मेरे साथ उनसे कम नहीं। उससे साठ-गाँठ बैठाने के अतिरिक्त और कोई गोटी नहीं बैठती। वह अब तक मुझसे मिलने नहीं आया। वह भले न आवे, मुझे अपना काम स्वयं करना चाहिए। मैं स्वयं चलूंगा। वह पहर रात तक इसी उधेड़-बुन में पड़े रहे। अबतक मोटरों तथा यात्रियों का आवागमन सड़क पर बन्दप्रायः था। वह चुपके उठे और विद्युत-दीपों द्वारा आलोकित सदर सड़क को छोड़कर गलियों से होते और सबकी आँखें बचाते त्रिपाठी के घर पहुंचे। बैठक में लगी घड़ी ने, जल-तरंग की भाँति, सप्त-स्वरों के उपरान्त तीव्र और कोमल स्वरों को बजाकर उनका स्वागत किया। त्रिपाठी सोने की तैयारी कर रहे थे। बरामदे में खड़े शुक्ल को देखते ही हर्षातिरेक में बोले:—

"वरदान को साकार पाकर मैं किं कर्त्तव्य-विमूढ़ हो रहा हूं।"

"यह आपकी महानता का द्योतक है कि मुझे इस योग्य समझ रहे हैं।"

"शुभागमन का कारण ?"

"कल डी० सी० सी० के अध्यक्ष का चुनाव है। आपका सहयोग अपेक्षित ही नहीं, अनिवार्य है। मैंने सुना, आप खड़े हो रहे हैं।"

"मैं नहीं, शास्त्री।"

"वह तो मुझसे बतला रहा था कि आधे से अधिक सदस्य आपको चाहते हैं।"

"कल वह आया था। मेरा बहुमत देखकर, अपने लिये अध्यक्ष और मुझे मन्त्री बनने को कहा।"

"आप तो जानते ही हैं, वह गत कई वर्षों से मंत्री है। लाख माँगने पर आजतक एक कौड़ी का हिसाब नहीं दिया। हज़ारों पर हाथ साफ किये हैं।"

"हाँ, ठीक है। इससे किसी प्रकार पिंड छुड़ाना चाहिए, वरना कांग्रेस को ले डूबेगा।"

"यह तो आपको अपनी पार्टी का बतला रहा था।"

"सोलह आने असत्य। मुझसे तो आपको भी अपनी पार्टी का बना गया है। वास्तव में उसके साथ कोई नहीं है।"

"आप मन्त्री रहना चाहते हैं, तो रहिए। उसे संसद का टिकट दिलवाकर, इस सड़ी मछली को तालाब को गंदा करने से दूर कर दिया जायगा।"

"मैं अध्यक्ष बना रहना चाहता हूँ।"

"मैं आपके साथ हूँ। परन्तु विधान-सभा तथा संसद के लिये मेरे साथियों को भी टिकट मिलना चहिए।"

"अवश्य। आधे आपके और आधे मेरे।"

"मेरी सात की सूची यह है।"

"और मेरे सात ये हैं। परन्तु शर्मा को आपने कैसे रखा?"

"बड़ी मदद करता है, डी० सी० सी० को जिन्दा रखा है। कड़ुआ मुंह जरूर है, लेकिन दिल का साफ है।"

"वह तो बड़ा बदतमीज है, और बदज़बान भी। उसे अभी और सबक सीखने दीजिए। पत्थर पर बिना घिसे हिना रंग नहीं लाती। इसके अलावे खीरे को सिर से काट नमक भरने पर ही उसकी तिताई जाती है।"

दूसरे दिन शुक्लजी अध्यक्ष चुन लिए गये और त्रिपाठीजी मंत्री। शर्मा के हाथ केवल शून्य लगा क्योंकि उनका निर्वाचन रद्द हो गया। विधान-सभा तथा संसद के उम्मीदवारों में शुक्लजी, शास्त्रीजी तथा त्रिपाठीजी प्रभृति चौदह व्यक्तियों

के नाम भेजे गये, जो पा० सी० सी० के भी सदस्य थे। शर्मा के नाम का प्रस्ताव तक न आया। वह बौखला गया। पार्लियामेन्टरी बोर्ड के समक्ष शर्मा के नेतृत्व में, प्रतिद्वन्द्वी सदस्यों ने, जिनकी संख्या २८ थी, टिकट के लिए सीधे प्रार्थनापत्रों को दिया। बोर्ड के समक्ष एक ने दूसरे के विरुद्ध भीषणतम आरोप लगाये और ताँगों, रिक्शों, कारों और मोटरगाड़ियों में भर-भरकर लिखित और जीवित सबूतों को लाकर पेश किया। गत चुनाव के समय निस्सन्देह एक दूसरे पर कीचड़ उछाले गये थे, परन्तु इस बार ऐसे-ऐसे अकाल्पनिक, अमानवीय एवं अस्वाभाविक कोटि के आरोप थे, जो न देखे और सुने गये थे। टिकट उन्हीं को मिले, जिन्हें डी० सी० सी० ने भेजा था। स्वतंत्रता-संग्राम के वे परले सिरे के कटे सिपाही थे, जो इशारे पर जान देनेवाले थे। हाथ उठाने की कौन कहे, जो भाभा, मथाई; मुकर्जी और गिरि की भाँति जिस पत्तल में खायें, उसी पत्तल में छेद करने का स्वप्न भी देखने का साहस न कर सकते थे। बोर्ड के पूछने पर शुक्लजी ने शर्मा के बारे में अपनी रिपोर्ट दी कि यह एक चारित्रहीन एवं उच्छृङ्खल नवयुवक है, ब्रिटिश राज्यकी दुम एक रायबहादुर का लड़का है। अपने पैसों से कांग्रेस का प्रारम्भिक सदस्य बनाकर और जातीयता का विषाक्त प्रचार करके काँग्रेस को कलंकित कर रहा है। १६४७ की स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद के राजनीतिक बरसाती मेंढकों में से यह भी एक है।

शुक्लजी का कलेजा ठंडा हुआ, जब बोर्ड का निर्णय उन्होंने सुना कि बेचारे शर्मा का ६ वर्ष के लिए काँग्रेस से टिकट कट गया!

—:०:—

कोर्स की कराह

आठ जुलाई सन १९५३ को, राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में, मैं करुण को भर्ती कराने के लिये, उसी अरमान से लाया, जिस अरमान से मेरे पिताजी क्षत्रिय-कालेज काशी में ९ जुलाई सन १९२३ को, मुझे ले गये थे। अंतर केवल इतना था कि उस समय देश परतंत्र था। परिस्थितियाँ प्रतिकूल थीं। अनवरत संग्राम के पश्चात् विदेशी शासकों द्वारा स्वतंत्रता की प्रथम सीढ़ी—स्वायत्त शासन-विभाग—पर चढ़ने का अधिकार सौंपा जा चुका था। मैं अपने जीवन की तेरह बरसातें देख चुका था और मेरे वर्नाक्यूलर फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर भी मेरा नाम मुझे तीन वर्ष पीछे ढकेलकर, स्पेशल फर्स्ट या अन्य शब्दों में सिक्स्थ क्लास में ही लिखा गया, जिसके कोर्स में मुझे केवल दो विषय—इँगलिश तथा संस्कृत—ही पढ़ने पड़े थे। परन्तु इससमय परिस्थितियाँ अनुकूल थीं। स्वतंत्र भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना चालू की जा चुकी थी। मेरा पुत्र करुण दस ग्रीष्म की ऋतुयें पूर्ण कर चुका था और उसके अपर प्राइमरी परीक्षा पास करने पर भी उसका नाम सिक्स्थ क्लास में ही लिखा जानेवाला था, जिसका कोर्स पूर्व की अपेक्षा अपार था। तब शिक्षा का यह ध्येय था कि जो कुछ जानो, पूरा जानो। परन्तु अब यह है कि जितना जान सको, जानो। जब मैं उसे उँगली पकड़ाये छठें दरजे के दरवाजे पर पहुंचा, तो दिन के दस बज चुके थे और

वहाँ अभिभावकों के आवागमन का तांता लगा हुआ था। उनमें से अधिकांश अपने अबोध बालकों का हाथ पकड़े, क्लासटीचर तक सर्वप्रथम पहुँचने का प्रयास कर रहे थे। क्लासटीचर चौकी पर रखी एक कुर्सी पर आसीन थे, जो उनके समक्ष ही स्थित टेबुल की ऊँचाई से सामजस्यता स्थापित किए हुए थी। जब मास्टर साहब भीड़ से कभी ऊब जाते, चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ाने लगते। इस दौरान में एक बार उनकी नज़र मुझ पर पड़ी। मुद्दत के साथ छूटे सहपाठियों को एक दूसरे के पहचानने में देर न लगी। वह अन्य अभिभावकों को हटाते मुझे बुलाये। हमारी दृष्टियों ने एक दूसरे का कुशल-क्षेम पूछ लिया।

"बच्चे का नाम ?" मेरे उपस्थित होते ही उन्होंने पूछा।

"करुणा" मैंने उत्तर दिया।

"इँगलिश का कुछ ज्ञान है ?"

"जी हाँ, प्राइमर आधा पढ़ चुका है।"

"इस कक्षा में प्रवेशार्थियों की संख्या अत्यधिक है, अतः सबका टेस्ट होगा।"

धन्यवाद देकर मैं करुणा को समझाने चला आया।

तीन बजे के लगभग साठ बालकों को टेस्ट के निमित्त बैठाया गया। कुछ इतने छोटे थे कि डेस्क की ऊँचाई तक नहीं पहुँच पा रहे थे। कितने अकेले पड़ जाने पर घबड़ाकर सिसकियाँ भरने लगे, और अधिकतर अम्मा और पिता के नामों की रट लगाने लगे; जिससे सिद्ध होता था कि वे स्कूल का साक्षात् प्रथम बार ही कर रहे हैं। उपस्थितियों में चतुर्थांश वयस्क थे, जो कई स्कूलों की हवा खाये प्रतीत होते थे। इँगलिश, हिन्दी तथा गणित में नाममात्र का टेस्ट हुआ। क्लासटीचर से पुरानी जान-पहचान का इतना लाभ अवश्य

हुआ कि करुण पैंतीस सफल विद्यार्थियों की सूची में स्थान पा गया। पच्चीस वही छँटे, जिनको कलम पकड़ने का शऊर नहीं था। प्रवेश पाये विद्यार्थियों में अधिकतर उसी कोटि के थे, जिनकी चंचलता से पनाह पाने के लिए, उनके माता-पिता अपना गला छुड़ाकर स्कूल के गले मढ़ना चाहते थे। मुझे प्रवेश-पत्र प्राप्त हुआ, जिसे भरकर मैंने शुल्क जमा कर दिया।

इस शुभकार्य से निवृत्त होने पर मेरा मन सावन के हिंडोले में झूलने लगा, और रंगीन कल्पनायें करने लगा कि अब मेरा करुण वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के साँचे में ढलकर, स्वतंत्र भारत का एक होनहार एवं योग्य नागरिक बन जायगा। मैं प्रफुल्ल-वदन उसके साथ घर लौटा आया । इस प्रफुल्लता में श्रीमती ने योग देकर मालपुए पर चीनी छोड़ा।

दूसरे दिन से करुण के स्कूल जाने का नियमित क्रम बँधा। वह सवा नौ बजे स्कूल अवश्य चला जाता, और चार बजे से पहले अवश्य लौट आता, क्योंकि मेरे क्वार्टर से स्कूल का मार्ग मुश्किल से पाँच मिनट का था। ऑफिस से आते ही मै उससे रोज पूछता, "आज क्या पढ़ा ?"

"अभी पढ़ाई शुरू नहीं हुई।" वह उत्तर देता।

चौथे दिन मेरे प्रश्न के उत्तर में उसने मुझे अपने कोर्स की किताबों और कापियों की एक लम्बी सूची दी और आग्रह किया कि वे आज ही खरीद दी जायँ, क्योंकि कल से ही पढ़ाई शुरू हो जायगी।

मैंने उसकी परीक्षा लेने के विचार से पूछा "कौन-कौन से विषय पढ़ाए जायेंगे, तुम्हें याद है ?"

"हाँ, अच्छी तरह। कहिए, तो नाम गिनाऊँ ?" उसने बाल-सुलभ सरलता से उत्तर दिया।

'अवश्य। अभी बतलाओ।"

शिशु स्वभावानुसार कनिष्ठिका के पोरों पर अपने अंगूठे के सिरे को रखकर वह गिनाने लगा—

"पिताजी, (१) हिन्दी (२) संस्कृत (३) इँगलिश" कहकर वह ठिठक गया। पुनः उन्हीं तीनों को दुहराया। उत्साहित करते कहा, "अच्छी तरह याद करके बतलाओ।"

"चौथा अंकगणित।"

इसके बाद वह एकदम भूल गया। मैंने उसके हाथ में उसी के हाथ की लिखी सूची दे दी, और पढ़ने को कहा। वह धड़धड़ाकर पढ़ने लगा—

"(१) हिन्दी की दो पाठ्यपुस्तकें, व्याकरण की १, (२) अंग्रेजी की दो पाठ्य पुस्तकें, ट्रान्सलेशन-कम्पोजीशन की १, ग्रामर की १, (३) संस्कृत की २, (४) अंकगणित १, (५) बीजगणित, रेखागणित १, (६) विज्ञान १, (७) इतिहास १, (८) नागरिक-शास्त्र १, (९) भूगोल १, एटलस १. और (१०) कला १।"

इतने विषयों के नाम सुनते ही मेरा दिमाग चक्कर करने लगा। मुझे आशंका हुई, "क्या अविकसित बाल-मस्तिष्क इस कोर्स को ग्रहण कर कक्षा-परिता पार करने में समर्थ होगा?" परन्तु मुझे मजबूरन् सन्तोष करना पड़ा, इसलिए कि राज्य के शिक्षा-विशारदों द्वारा निर्देशित यह पाठ्यक्रम अवश्य ही शिशु की ग्रहण-शक्ति का आंकन करके ही स्वीकृत किया गया होगा। अतः मैंने शाम को ही पुस्तकें तथा कापियाँ क्रय करके उसे दे दीं और साथ ही उसे ताकीद भी कर दी कि वह मुझे अपने क्लास का टाइम-टेबुल अवश्य दिखला देगा। उसने मेरे आदेशानुसार दूसरे दिन दिखलाया। ८ घण्टे चालीस मिनट प्रति घण्टे के हिसाब से रोज पढ़ना था। इँगलिश

तथा हिन्दी का रोज ही एक-एक घण्टा था। परन्तु अन्य विषय बारी-बारी से आते थे।

मैं करुण के अध्ययन-प्रणाली की गति-विधि का निरीक्षण करने लगा; और एक पक्ष तक निरंतर देखता रहा। करुण मेरे लाख मना करने पर भी सुबह जलपान कर छ: बजे पुस्तकें लेकर पढ़ने बैठ जाता। बारी-बारी से संस्कृत, अंग्रेजी तथा गणित के पठन में दो घण्टे का समय देता। तदनन्तर अन्य विषयों की पुस्तकों को जल्दी-जल्दी उलाटता और देखकर रखता जाता। मुझे लगता, जैसे वह पढ़ना चाहता है; परन्तु पढ़ नहीं पा रहा है। किसी भार से दबा हुआ है और उसे कोई चिन्ता खाए जा रही है। इस उधेड़-बुन में तबतक स्कूल की प्रथम घण्टी टन टन् करके कर्ण-कुहरों को विदीर्ण करने लगती और स्कूल आने का बरबस निमंत्रण देती। वह जल्दी-जल्दी किताबों और कापियों को समेटकर झोले में भर देता और स्नान-स्नान करके अपने पाँच-सात ग्रास भोजन से अपनी माँ को चिन्तित करते, स्कूल चल देता।

"मेरा बच्चा बिना खाये चला जाता है," उसकी माँ मेरी ओर पीठ किये, सिसकियों से अप्रत्यक्ष रूप में उलाहना देती।

"नई पढ़ाई, नया स्थान और नया पानी है। धीरे-धीरे सब अनुकूल हो जायँगे।"

"जब वह कुछ खायेगा ही नहीं, तो पढ़ेगा खाक? ऐसा कर्णफूल पहनने से लाभ, जिससे कान ही टूट जाय?"

"तो अपनी ही भाँति उसे भी पढ़ाई से कोरा रखना चाहती हो?"

"मैं ६ वर्ष की ही उम्र में तुम्हारे घर आई, जब तुम

प्राइमरी में पढ़ते थे। परन्तु तुम इतना कम नहीं खाते थे।"

"कम खाना और गम खाना, सर्वदा हितकर होता है। उस समय की पढ़ाई का ढंग दूसरा था, जो अब बदल गया है।"

वह रो-धोकर चुप हो जाती; परन्तु चुपके-चुपके मध्यान्तर में नौकर से कुछ न कुछ जलपान, जो पाँच-सात पराठों या पूड़ियों का होता, भेज देती और चार बजे शाम को हलवा या अन्य गरिष्ठ पदार्थ बनाये, करुण की बाट जोहा करती। नौकर से चुपके-चुपके पता लगाने से मुझे ज्ञात हुआ कि करुण मध्यान्तर का जलपान अपने साथियों में बाँटकर अपने एक या आधा टुकड़ा ही खाता और शाम के नाश्ते की ओर ताकता तक न था। मां का प्यार, अपने लाडले को अत्यधिक भोजन कराके, छूमंतर से, मंगला राय बना देखना चाहता था। परन्तु अनुकूलता प्रतिकूलता में परिणत होते दृष्टिगोचर हो रही थी, करुण हृष्ट-पुष्ट होने के बजाय दिन-पर-दिन दुबला-पतला होता जा रहा था, जैसे किसी क्षय-रोग से पीड़ित हो गया हो। करुण खेल से लौटने पर शाम को भी ६ से ८ बजे तक पुस्तकों के मध्य डूबा रहता। उसकी इस अस्वाभाविक नियमबद्धता से मेरा मन आशंकाओं से पूर्ण हो गया। मैं पढ़ाना चाहते हुए भी स्वयं नहीं पढ़ाता था, ताकि उसपर अधिक स्ट्रेन न पड़े। वह पूछता भी न था, क्योंकि अपने तरीके से पढ़ने में लगा रहता।

एक मास पश्चात् अकस्मात् एक दिन धोबी के हिसाब की कापी मेरे हाथ पड़ी। मैंने देखा, उसमें करुण के हाथ से लिखे कपड़ों के नाम तथा देने के दाम त्रुटिपूर्ण अंकित हैं। तदनन्तर औत्सुक्य-निवारणार्थ मैंने उसके क्लास की कापियों

को भी देखा, जिनमें इस अवधि के भीतर एक या दो अभ्यास ही कराये गए थे। मुझे शिक्षण और शिक्षार्थी की इस प्रगति पर हार्दिक असंतोष हुआ। ज्यों ही सुबह को वह पढ़ने बैठा कि मैंने प्रश्न किया—

"धोबी का हिसाब तुम्हारा लिखा था?"

"जी हाँ।"

"तुमने सवा कोड़ी की धुलाई सवा रुपये की दर से क्या लिखा था?"

"ढाई रुपये।"

एक बार पुनः पुष्टि-निमित्त मैंने परीक्षा ली—

"डेढ़ मन लकड़ी का दाम डेढ़ रुपये की दर से क्या हुआ?"

"तीन रुपये।"

मेरे दिमाग में खलबली पड़ गई। मैंने पूछा, "तुम्हारे उत्तरों से मालूम होता है कि तुम यहाँ पर तो कुछ पढ़े ही नहीं, गाँव का भी पढ़ा चौपट कर डाले हो।"

"गाँव की पाठशाला में पढ़ाई ही कहाँ होती है? गाँव ही के मास्टर साहब लोग पढ़ाते हैं। दिन में कभी एक घंटे के लिए आ जाया करते हैं।"

"तब लड़के स्कूल में क्या करते हैं?"

"मास्टर साहबों के साथ उनके घरेलू और गृहस्थी के कामों को ही किया करते हैं। उससे छुट्टी मिली, तो एक घण्टा पढ़ा भी करते हैं।"

गणतंत्र में, राष्ट्र-निर्माता द्वारा जन-स्वातंत्र्य का इस प्रकार सदुपयोग होते देख, राष्ट्रोत्थान की रंगीन कल्पनाओं के विविध चित्रों पर एक गहरा रंग फैल गया। क्या युगानुसार, वेतन

अधिकतम, कार्य न्यूनतम, प्रत्येक वेतनभोगी का सिद्धान्त हो गया है ?"

"इस स्कूल में कितने घण्टे पढ़ते हो ?"

"आठ पीरियड रोज।"

"मास्टर साहब आते हैं ?"

"हाँ, हरएक में नये-नये।"

"पढ़ाते हैं ?"

"कभी जबानी, और कभी ब्लैक-बोर्ड पर लिखकर।"

"तुम लोग प्रश्न नहीं पूछते ?"

"पूछने पर डाँट देते हैं और कहते हैं, यदि पैंतीस लड़कों के सवालों का जवाब ही दूँ, तो पढ़ाऊंगा क्या ? घर से पढ़कर आया करो।"

"और विषयों में कैसे हो ?" मैंने प्रोत्साहन देते पूछा।

फिर तो प्रश्नों का ताँता लग गया, "पिताजी ! मुझे तो हिन्दी भी पूरी नहीं आती।"

"इसकी क्या चिन्ता, अपनी मातृभाषा है, धीरे-धीरे आ जायगी।"

"परन्तु इसके गद्य-पद्य तो व्याकरण के साथ पढ़ने पड़ते हैं, जो समझ में नहीं आता।"

"परिभाषाएँ रट डालो। फिर अभ्यास करो। कठिनाई आसान हो जायगी।"

"अँग्रेजी भाषा क्यों पढ़ाई जा रही है ?"

"अंग्रेजी आज दुनिया की भाषा हो रही है। इसलिए इसका जानना जरूरी है।" मैंने उसे भुलावा देने की चेष्टा की।

"क्या अपनी भाषा जाने बिना सात समुन्दर पार की भाषा आ जाती है ?"

"आनी क्यों नहीं ? जैसे शुरू में तुम फुटबाल खेलना नहीं जानते थे, परन्तु एक महीने में सीख गये।"

परन्तु करुण अपनी जिज्ञासा का उचित समाधान नहीं पा रहा था। उसने पुनः शंका की।

"अंग्रेजी दुनिया की भाषा है; परन्तु संस्कृत क्यों पढ़ाई जाती है ? क्या इसके बिना काम नहीं चल सकता ?"

मैं बड़े चक्कर में पड़ा, इसका क्या उत्तर दूँ। बाल-मस्तिष्क पर अच्छी-बुरी जो रेखा खिंच जाय, वह अमिट रहती है। यदि संस्कृत की ओर इसकी अभिरुचि अभी से कम हुई, तो सरकार के अनुमानानुसार करुण ज्ञान-रत्न के अक्षय भाण्डार से वंचित होकर अकिंचन रह जायगा। मैंने उसका समाधान किया,

"संस्कृत हिन्दी भाषा की माँ है—जैसे ईख चीनी की और तुम्हारी माँ तुम्हारी।"

"परन्तु इसका रूप रटते-रटते भी याद नहीं होता। क्या दूसरी तरह नहीं पढ़ाई जा सकती ?"

"आरम्भ में, हरएक भाषा के व्याकरण तथा शब्दों को रटना पड़ता है। सीढ़ी-सीढ़ी चढ़ने से ही ऊँचा चढ़ा जाता है।"

"गणित क्यों पढ़ाया जाता है ?"

"इससे दिमाग बढ़ता है।"

"एकाध लड़कों को छोड़कर क्लास में किसी को कुछ नहीं आता।"

"वे गणित को हौवा समझ लिए हैं, इसीलिए। वरना नियमपूर्वक एक सवाल भी रोज लगायेंगे, तो सोचने की शक्ति बढ़ जायगी।"

करुण झुँझला उठा। वह एक ही बार पूछ बैठा, "इतिहास,

भूगोल, विज्ञान, नागरिक शास्त्र, तथा आर्ट सीखकर क्या होगा ?"

मैं बड़े असमञ्जस में पड़ा। अभी एक मास भी इसे स्कूल जाते हुये नहीं हुआ, और यह इतना उकता गया, जैसे स्कूल से पिण्ड छुड़ाना चाहता है। यदि ऐसे ही अध्ययन से विमुख हुआ, तो 'आज का विद्यार्थी कल का राष्ट्र-निर्माता होगा' वाली स्वयंसिद्धि चरितार्थ न होगी। पंचवर्षीय योजनायें कल्पना-मात्र रह जायेंगी। मैंने सोचा, किसी-न-किसी प्रकार करुण में, अध्ययन की ओर, उत्कट इच्छा उत्पन्न करनी चाहिये, वरना कुल गुड़ गोबर हो जायगा।

मैंने उसे समझाने का प्रयत्न करते एक छोटा-सा लेक्चर दे डाला--

"इतिहास हमारे महान् पूर्वजों की धीरता-वीरता का वर्णन करता है, जैसा तुम्हें बनना चाहिए। भूगोल से सारे संसार का हाल ज्ञात होता है। विज्ञान से नई-नई बातें जानी जाती हैं, जिससे अपनी जरूरतें सहज ही पूरी की जा सकें। सब एक दूसरे का भला करें, नागरिक-शास्त्र शासन-व्यवस्था के नियमों से जानकारी हासिल कराता है। आर्ट सीखकर बड़े होने पर रोजगार-धन्धा किया जा सकता है, जिससे रोटी का सवाल हल हो।"

"पिताजी ! यदि इतने विषय न पढ़ाये जायँ, तो काम अकाज होगा ?"

"नहीं बेटा, अकाज न होगा, परन्तु इसी उम्र से अधिक से अधिक बातों की जानकारी का अभ्यास करते जाना, आगे लाभकारी होगा।"

"जो विषय मुझे खूब आता है, यदि वही पढ़ाया जाता, तो मैं बहुत पढ़ जाता।"

"तुम्हारा मन जिसमें लगता है, चाहिए उसी को खूब पढ़ो और दूसरे को उससे कम।"

"पढ़ूँगा, परन्तु न तो घर पर ही पढ़ पाता हूँ और न स्कूल में। ये जैसे मेरे दिमाग में घुसते ही नहीं।"

इतने में टन-टन-टन करके अविराम गति से स्कूल की घण्टी चेतावनी देने लगी। उसने नित्य की भाँति किताबों और कापियों को जैसे-तैसे समेटकर झोले में भरा और नल पर पक्षी-स्नान और तदनन्तर सूक्ष्म भोजन करके, वह अपनी माँ को चिन्ताकुल करते स्कूल भागा।

करुण की दशा उस नए निकाले जानेवाले बैल की भाँति हो रही थी, जो पहलेपहल एक बड़े खेत में जोतने के लिए ले जाया जाता है, परन्तु कुछ देर जुतने के पश्चात्, वह अपरिमित खेत देखकर निरुत्साहित हो बैठ जाता है और फिर मार-मारकर उठाने पर भी नहीं उठता है। वह जिस उत्साह से गाँव छोड़कर आया था, वह बाष्प की भाँति विलीन हो गया। उसकी स्फूर्ति, चंचलता, बुद्धि-कुशाग्रता अब गतिहीनता, चिड़चिड़ापन और बुद्धिमन्दता में परिणत हो गयी। उसका उज्ज्वल स्वास्थ्य दो मास में तिमिराच्छन्न हो गया। तृतीय मास ने उसके शरीर में हल्के ताप का आभास कराया, वह खाने से मुँह मोड़ने लगा। बच्चे का तनिक कष्ट माँ की परेशानी का कारण हो जाता है, उसका कोमल हृदय नाना प्रकार की आशंकाओं से पूर्ण हो जाता है, जिसे वह अपने आँसुओं से व्यक्त करती है।

"मैं बार-बार कह रही थी, मेरे दुधमुँहे बच्चे को अभी गाँव पर ही पढ़ने दो, परन्तु तुम नहीं माने। लो, अब तो तुम्हारी मुराद पूरी हुई।" करुण को गोद में लिए वह भर्राये शब्दों से मुझे उलाहना देने लगी।

स्त्रियों का हृदय पीपल के पत्ता-सदृश्य होता है, जो वायु के स्पर्शमात्र से हिलने लगता है, आँखें पावस-घन होती हैं, जो पुरवा और पछुवा चलने मात्र से बरस पड़ती हैं।"

"तुम माँ का हृदय क्या जानो? जाके पैर न फटी बेवाई, सो क्या जाने पीर-पराई? एक महीने पढ़ाई के बाद से ही मेरे लाल का दिमाग फिरा-फिरा दिखलाई पड़ने लगा। उसे भोजन से बैर-सा हो गया। घर पर जब तक रहता है, बार-बार अपनी किताबों और कापियों को उलाटता रहता है, जैसे इनके बोझ से लदा हुआ है।"

"बच्चे स्वभाव से ही चंचल और नियंत्रण-हीन होते हैं। मैं जितना ही पढ़ने से रोकता हूँ, वह और भी पढ़ता है। बरसात का मौसम है, बुखार आ ही जाता है।"

अर्द्धांगिनी की जिद ने डाक्टर के अतिथि-सत्कार में चालीस-पचास रुपये लगा दिये। एक सप्ताह के भीतर करुणा रोगमुक्त हो गया। परन्तु डाक्टर ने वार्निंग दी कि माइंड बहुत वीक है, मेन्टल स्ट्रेन से बचाना होगा, अन्यथा पागल हो जायगा।

मानव नवीनता की ओर आकर्षित होता है; परन्तु बालक तो क्षण-क्षण।

करुणा को, मैंने एक सप्ताह पूर्ण विश्राम लेने के निमित्त, स्कूल न जाने देना चाहा, परन्तु घर तो उसे इस प्रकार काट रहा था, जैसे धोबी को दिगम्बर निवासी गाँव। मुश्किल से तीन दिनों तक वह रुका, चौथे दिन किसी कार्यवश मैं ८ बजे ही शहर चला गया। ९। बजे लौटने पर पता चला कि वह खाने के बाद माँ के चुरके कहीं चला गया। उसकी किताबों, कापियों और झोले

की अनुपस्थिति से निश्चित-सा हो गया कि वह स्कूल गया है।

आफिस से लौटने पर सन्ध्या समय मैंने करुण को डाँटा, "तुम स्कूल क्यों चले गये ? डाक्टर ने तो मना किया था।"

"घर पर बैठे-बैठे मेरा मन नहीं लग रहा था।"

"क्या वहाँ मन लगा ?"

"जी हाँ, आज खेला भी।"

"और ?"

"पढ़ा भी।" कुछ ढीले स्वर में उत्तर मिला।

"अधिक खेला न करो।" मैंने चेतावनी दी।

तदनन्तर दो सप्ताहों तक उसकी दिनचर्या का सूक्ष्म अध्ययन करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि पहले पढ़ाई उससे चिपकी रहती थी, परन्तु अब वह स्वयं उससे जी चुरा रहा है। मेरी आँख बचाकर, पुस्तकों,-कापियों को टेबुल पर खुली छोड़कर, चुपचाप खिसक जाया करता है या लघुशंका या शौच होने के बहाने, मेरी आँखों से ओझल हो जाया करता है और ठीक नव बजे, स्कूल की पहली घंटी बजने पर, लौटता है। कभी-कभी स्कूल से क्लास छोड़कर उसके इधर-उधर घूमने की भी शिकायत मेरे कानों में पड़ी। उसकी दशा उस धुनिये की भाँति हो रही थी, जो रुई का गोदाम देखकर जी छोड़ दिया था कि कुल उसे ही धुननी पड़ेगी या उस पंगु की भांति, जिसको पहाड़ के सामने लाकर कह दिया गया कि उसे पार करना है।

अध्ययन से इस प्रकार अरुचि होते देख मैं करुण को डाँट-फटकार, कनौठियाँ, चाँटे देने के क्रम से बेंत मारने के स्टेज तक पहुँच गया। परन्तु मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की। मैं जितना ही मारता, वह उतनी जिद पकड़ता जाता। उसके करुण क्रन्दन से मेरा हृदय फटने लगता और उसकी माँ बेहाल हो जाती। परन्तु उसके भविष्य का खयाल कर हम मूक रह

जाते। मेरी दशा उस स्वार्थी इक्केवान की भांति हो रही थी, जो अपने निर्बल घोड़े को, भाड़े के लोभ में, अपने इक्के पर तीन की जगह ६ सवारियां बिठाकर, डंडों के बल दौड़ाना चाहता है।

अत: शारीरिक दंड की गर्मी उसके आँसुओं को सुखाकर उससे सत्याग्रह कराने लगी। वह फूटी आँखों भी किताबों की ओर न देखता। मैं इस प्रश्न के हल के निमित्त उन सभी शिक्षा-विशारदों से सलाह लेता, जो मुझसे मिल जाते। इसका वे उचित समाधान नहीं कर पाते, अपितु मुझे संतोष देकर विदा लेते कि एक युग-विशेष आ गया है, जिसमें विद्यार्थियों की प्रकृति उच्छृङ्खलता तथा अनियंत्रण की ओर अत्यधिक हो रही है और अध्ययन की ओर कम। उनकी दलीलें मुझे नहीं जँचतीं। अब मैंने मारना छोड़ दिया और अहिंसात्मक उपाय अपनाया। सुबह-शाम अपने साथ बैठाकर प्रेमपूर्वक पढ़ाने का क्रम प्रारम्भ किया। दस विषयों की चौदह पुस्तकें पढ़ाने में, जब मुझे कठिनाइयां अनुभव होतीं, तब मेरे बताये हुये को ग्रहण करने में उसे कितनी होती होगी, जिसका मस्तिष्क अविकसित था। वह प्रथम घण्टे में सब कुछ अच्छी तरह समझ जाता, परन्तु दूसरे घण्टे में अपने को अक्षम पाता, क्योंकि उसका दिमाग चट जाता और वह मूर्खतापूर्ण प्रश्न करने और उत्तर देने लगता। बाल-मस्तिष्क पर विषयान्तर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अत्यधिक भोजन हानिकर ही नहीं, मत्युकारक होता है।

दो सप्ताह तक मैं, दो घंटे उसे सुबह और शाम, नित्य पढ़ाता रहा। तदनन्तर करुण मेरे साथ बैठने में टाल-मटोल करने लगा। वह पढ़ने के बजाय मेरी सेवा में अधिक रुचि दिखलाता। बाजार से वस्तुयें लाने में अधिक दिलचस्पी लेता, माँ के आदेश पालन की आड़ में। मैं उसकी टाल-मटोल को खूब

पहचानता और मीठी डाँट-फटकार से अपने साथ बैठाता। इस मानसिक परिश्रम का फल वही हुआ, जो डाक्टर ने चेतावनी के रूप में दी थी। वह थका-थका-सा दिखलाई देने लगा। उसने बतलाया भी कि उसका शरीर कुछ-कुछ गर्म रहता है, परन्तु मैंने इसे भी उसकी नित्य की बहाने-बाजियों में ही शुमार किया। फिर क्या था, एक दिन वह खाट पकड़ लिया। उसका शरीर ज्वर से तवे की भाँति जल रहा था और आँखें अंगार की तरह लाल हो गई थीं। दो दिनों तक वह बुखार में बुत पड़ा रहा। तीसरे दिन उसे डेलिरियम हो गया। वह रह-रहकर बडबडाने लगा—पी यू टी=पुट....। बी यू टी=बूट। रामः, रामौ, नाउन, विशेषण, दशमलव, ब्याज, रेखा, कोण, बोर्ड ''के' कर्तव्य''' हमारे पूर्वज''' सागर, नदी हिमा''' ल''' य''''नदी–नदी पिताजी''''! न मारिये, मैं अंग्रेजी जरूर पढ़ूंगा, क्योंकि यह संसार की भाषा हो रही है। हिन्दी मातृ-भाषा है" , संस्कृत उसकी माँ'''मेरी माँ की तरह''' देखिये गणित से मेरा दिमाग कैसा तेज हो गया है। मेरे कान न उमेठिए, बधने लगता है।

एक घंटे वह चुप रहा, फिर दूसरे के शुरू होते ही इसी प्रकार बकने लगा। इस प्रलाप से मैं भयभीत हो गया। परम पिता से मैं यही प्रार्थना करने लगा, "निराधाराधार, करुण इस बार बचा, तो इसे योग्य बनाने के लिये दूसरा ही प्रबन्ध करूँगा। अब तो मेरी सरकार भी योग्यता के आगे सनद नहीं चाहती। मेरी प्रार्थना चल ही रही थी कि उसकी बक-बक कर्ण-कुहर नहीं, हृदय को विदीर्ण करने लगी।

भूगोल ''' से'''संसार'' ' इतिहास'''' बाप-दादों'''बनूँ गा। नागरिक शास्त्र''' आर्ट'' कैसी सुन्दर चिड़िया है''' विज्ञान से हवाई जहाज पर उड़ूँगा'' 'मास्टरसाहब कहते—कहते हैं, जो ब्लैक बोर्ड पर लिखा है लिख लो पैंतीस''''प्रश्न'''के उत्तर समय नहीं है'''करुण के कोर्स की कराह असह्य हो उठी।

—०—

मनौती का महाप्रसाद

मनौतियों के उदाहरण से इतिहास के पृष्ठ शून्य नहीं हैं, परन्तु आज दिन इस कठिन व्रत का, दिनचर्य्या की भाँति, जिस प्रकार दुरुपयोग किया जा रहा है, वह एक खुला रहस्य है। इसका शिकार अधिकतर रूढ़िवादी, आर्थिक संकट-ग्रस्त वर्ग ही हो रहा है। लोग मूर्खता-वश मन्नतें मान तो लेते हैं, परन्तु उसे पूर्ण करने में असमर्थ होकर, अपने तथा व्रत को उपहास्पद बना देते हैं। इसके जो भीषण परिणाम होते हैं, वे आये दिन सामने आते रहते हैं। ऐसी ही एक घटना का उल्लेख किए बिना आज मैं नहीं रह सकता। मनौती की बलि-वेदी पर सुखिया का सर्वस्व कैसे लुटा, इसकी कहानी हृदय को कुरेदनेवाली है।

आषाढ़ का महीना था। प्रातःकाल से ही आकाश-प्राङ्गण में जलज-समूह छोटी-छोटी टुकड़ियों में विभक्त हो, चानमारी का अभ्यास करते कितने विरहियों को दुःख और कृषकों को सुख पहुँचा रहे थे। दिवाकर इस दृश्य को शनैः-शनैः लुक-छिपकर देखने सर पर आ गये थे। सुखिया मध्याह्न का भोजन बनाये पति की बाट देख रही थी कि दुखिया ने हाँफते घर में पैर रखा और पत्नी को सम्बोधन किया,

"इस बार मैं जेल से नहीं बच पाऊँगा।"

"क्यों? क्या हुआ?" सुखिया ने घबराकर पूछा।

"उस दिन की मार-पीट में, बुद्धू ने, थाने में मेरा भी नाम लिखा दिया है।"



"कैसे मालूम हुआ ?"

"आज दारोगाजी आये हैं और सबेरे से ही कई बार मुझे बुलवाए।"

"मार-पीट तो बुद्ध और रामू में हुई थी, तुम तो छुड़ाने गए थे !"

"यही तो सबसे बड़ा पाप हुआ। कोई मरता रहे, मरने दो, डूबता रहे, डूबने दो। बचाओ, तो आफत में जान फँसाओ।"

"अब क्या होगा ? हे सतनारायन बाबा ! अबकी हमारी लाज बचाओ, तो बिरादरी के साथ तुम्हारी कथा सुनूँगी, और पच्चीस ब्राह्मण देवताओं को भोजन कराऊँगी।"

"खेदन साहु की डिग्रीवाली ऐसी ही मनौती बाकी ही थी कि दारोगाजी की बरबस मत्थे आ पड़ी। अब तुमने तीसरी भी लाद दी। इनको पूरी करने में घर-द्वार के साथ तुम्हें भी बेंच दूँ, तो इतने रुपए नहीं मिलेंगे।" दुखिया ने सर पीटते कहा।

"तुम इतना जल्दी घबरा जाते हो। सब एक साथ ही हो जायेंगे। आखिर तुम्हें बुलाने कौन आया है ?"

"थाने का सिपाही—रामू के दरवाजे पर खड़ा है।"

"यदि तुम्हारा नाम न लिखा गया हो, तब जाओ पहले सिपाहीजी को यहाँ बुला लाओ।"

दुखिया सिपाही को बुलाकर अपने घर में लाया और साढ़े तीन पैरोंवाले बँसखटे पर टाट को बिछाकर उसे बैठाया।

"बाबूजी ! क्या आपने अच्छी तरह रपट पढ़ ली थी, जिसमें नाम लिखाया गया है ? इस नाम के इस गाँव में कई आदमी हैं।"

"हाँ, तुम्हारे ही आदमी का नाम लिखा है।" दुखिया की वल्दियत बताते धूर्त सिपाही ने अपनी बात की पुष्टि की।

"क्या पिण्ड छूटने की कोई गुञ्जाइश है ?"

"क्यों नहीं ? मैं दारोगाजी को मना लूँगा, यदि एक सौ दे दो तो।"

"जो हमारे पास है, उसे आप देख ही रहे हैं। हम लोग रोज कुआँ खोदकर पानी पीते हैं।"

"मुझे आम खाने से मतलब है, न कि गुठली गिनने से।"

"आप कोई हुकुम लाये हैं, जिससे इन्हें थाने ले जायेंगे ?"

सिपाही की हुलिया बिगड़ गई। वह झाँसा-पट्टी देकर पैसा ऐंठना चाहता था और एक दिहाती स्त्री के ऐसे प्रश्न के उत्तर देने के निमित्त तैयार होकर नहीं आया था। फिर भी वह हजारों घाट का पानी पिए था। उसने उसी मुद्रा में मूल्य चुकाया, "हाँ, दारोगाजी के पास है।"

"तब हम दोनों जेल चलेंगे। यहाँ कमाते-कमाते मरे जा रहे हैं, दोनों जून पेट को पूरे नहीं पड़ते। वहाँ भोजन तो मिलेगा।"

"नहीं मानोगे, तो चलना ही पड़ेगा। परन्तु पैसों के लिए तो जेल जाना ठीक नहीं जँचता। कहाँ तक दे सकते हो ?"

सुखिया ने छप्पर के नीचे पास ही टँगे बाँस के चोंगे को लाकर सिपाही के पैरों पर सारी कमाई उँड़ेल दी, जिसे उसने पेट काट-काटकर, पति के चुपके-चुपके, शीघ्र आनेवाले दिन के लिए बटोरकर रखा था। सिपाही ने पैरों से मारकर पैसों को बिखेर दिया और रोब गाँठा—

"जैसे मैं भीख माँगने आया हूँ कि दमड़ी और छदाम लूँगा। हटाओ इन्हें।"

सुखिया बहुत रोई और गिड़गिड़ाई और पैसों को पुनः बटोरकर सिपाही के आगे रखते हुए बोली—

"बाबूजी ! मेरा रोआँ रोआँ आशीर्वाद देगा, इसे आप ले लीजिए, पान खाने ही के लिए।"

सिपाही ने उन्हें गिना, तो बीस रुपये के हुए। उसे ढाढ़स हुआ और मुँह बनाते स्वीकार कर लिया। सोचा कि चार सौ बीस पढ़ाकर ही तो वह ले रहा है। दारोगा के फरिश्ते को भी इसकी खबर न होने दूँगा। भागे भूत को लँगोटी भली।

"तुम लोगों की गरीबी पर रहम खाकर ही मैं मजबूर हो गया, वर्ना बरसों जेल की हवा खाते।" एहसान जताते वह नौ-दो ग्यारह हुआ।

सुखिया फूले नहीं समा रही थी कि सतनारायन बाबा ने उसकी अर्जी मंजूर कर ली; परन्तु दुखियाके दिलको चैन न था। बीस रुपये के मूल्य पर उसके मत्थे पर अकस्मात् आई पुलिस की मनौती मजबूरन पूरी हुई। अब वह पहली और दूसरी कैसे पूरी करे? सतनारायन बाबा की दो कथायें बिरादरी के साथ सुननी पड़ेंगी। उसके उपरान्त ब्रह्म-भोज करना पड़ेगा। महँगी का जमाना है। बिरादरी तो कच्ची भी खा लेगी, परन्तु बाबा-जी लोगों को पक्की देनी पड़ेगी। उन्हें शुद्ध घी से बनी, गेहूँ के आटे की पूड़ियाँ चाहिए। घी पाँच रुपये सेर मिल रहा है। गेहूं ढाई सेर का है। घर में चूहे दंड पेल रहे हैं। इस निगोड़ी के मारे दम को आ गया हूँ। यदि मैं जेल ही चला गया होता, तो क्या बिगड़ता? जिसे रोटी के लाले, उसकी इज्जत कहां? घर में भाँग भूजो नहीं, बीबी चली हज करने। बिरादरी को जव की रोटी, मोटा चावल और दाल भी खिलाऊँ तो कहाँ से आयेगा? कथा के लिए प्रसाद चाहिये, सुनने के लिए गाँव के लोग आवेंगे, तो क्या बिना प्रसाद लिए वापस जायँगे? पंडितजी नया वस्त्र पहनकर कथा बाँचेंगे। उनके ठाकुरजी, पोथी और शंख को अलग-अलग पूजा चढ़ानी होगी। पैसा ही सबको चाहिए। गरीब को धर्म से मतलब?

उसका धर्म तो पेट पालना है, जो कभी पूरा नहीं हो पाता। क्रोध में आकर उसने पत्नी को पुकारा.

"तुमने किसके बूते पर मनौती मानी थी ?"

"अपने और तुम्हारे।"

"ऐसे मानने से लाभ, जब डिग्री का रुपया कर्ज लेकर ही दिया गया।"

"वह भी मिला, तो मनौती ही के बल पर, वरना जेल में सड़ते होते।"

"कर्ज से कर्ज चुकाने से तो जेल जाना ही अच्छा है।"

"मतलब निकालने के पहिले पैर पकड़ना और बाद में आँखें फेर लेना, तुम्हारी तरह दुनिया में दूसरा नहीं कर सकता। देवता के साथ हँसी-ठट्ठा नहीं किया जाता। उनका कोप हुआ, तो हमारी और बुरी गति होगी।"

"ज्यादा न बको। दोनों बार मिलाकर कितने ब्राह्मण और कितनी बिरादरी खिलाओगी ?"

"पचास ब्राह्मण और इतनी ही बिरादरी भी।"

"परन्तु इस जमाने में, तीन बुलाए तेरह आते हैं। अतः एक सौ से कम नहीं लगेगा।"

"घी न लगे, चिकना पके ?"

"तुम्हारी कैंची-सी जबान बेरोक चलती रहती है। बड़े बाप की बेटी बनी हो, तो दो न अभी, इन कर्जों को चुका दिया जाय।"

"तुम जल्द ही खीझ जाते हो। अब मेरे पास क्या धरा है ? तुम्हारे चोरी-चोरी एक-एक पैसा बटोरी थी। पाँच महीने हो गये हैं। सोची थी, समय पूरा होने पर, तुम्हारा भार हल्का रहेगा। परन्तु वह भी सिपाही ले गया।"

"गरीबों को ऐसी मनौती माननी चाहिए, जिसमें उनकी

देह लगे, श्राम नहीं। उन्हें तो बेल-पत्र, फूल, तुलसीदल और गंगा-जल चढ़ाने या एक दिन के बदले दस दिन व्रत करने की मनौती माननी चाहिए।"

"मैं औरत ठहरी, मेरी बुद्धि ही कितनी? अबसे ऐसा ही करूँगी।"

शीघ्र ही वह बाप बनेगा, इस शुभ समाचार को सुनकर दुखिया मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अब उसकी पत्नी को बाँझिन की मिली उपाधि टूट गई, क्योंकि विवाह होने के वर्ष भीतर ही, गाँव की स्त्रियों के विधानानुसार, वह माँ नहीं बन पाई थी। वह प्रसन्न-मुद्रा में बोला,

"फिर इनको पूरी करने का उपाय?"

"आजकल गाँव में नई सड़क बन रही है। उसी में मेहनत-मजूरी करके एक महीने में कमा लेंगे।" सुखिया ने सुझाया। दूसरे दिन से दम्पति ने सड़क पर काम करना प्रारंभ कर दिया। दोनों मिलकर ढाई रुपये रोज कमाते। इसके अतिरिक्त सुखिया सुबह-शाम चर्खा चलाती, और दुखिया कई घरों का पानी भरता, जिससे दोनों को भोजन-भर का मिल जाता। इस प्रकार काम करते लगभग सवा महीने व्यतीत हो गये। सुखिया का सातवाँ महीना चल रहा था। सौ रुपये ज्यों ही पूरे होने को आये कि कठिन परिश्रम ने सुखिया को आगे काम न करने की नोटिस दी। पहले उसे हरारत हुई, परन्तु इसकी अवहेलना करते वह काम करती रही। फिर क्या था, अबर को उनचास बयार लगती है। उसपर ज्वर ने आक्रमण किया और उसे खाटपर ला पटका। यह समाचार सुनते ही उसके घर पर लोगों का जमघट लग गया। बुढ़ियों ने कहा, इसे चुड़ैल लगी है। बुड्ढों ने दरखास्त की कि भूत सवार है। कितनों ने टोना का संदेह

लिया। अत परम्परानुसार दुखिया ने ओझाओं और झाड़-फूँक करनेवालों का शरण ली। इन गुनियों ने, पचासों रुपये भूत, चुड़ैल और टोना उतारने के निमित्त, देवता पर शराब और गाँजा चढ़ाने को ले लिये। परन्तु वह अच्छी नहीं हुई। क्योंकि देवता के सामने उसे बकवाने और खेलाने में, उसका शरीर और निर्बल हो गया। मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों झाड़-फूँक हुई। दुखिया ने सोचा, क्या सुखिया अपनी मानी मनौतियों के पूरी न करने से बीमार पड़ गई है? जरूर देवता नाराज हो गये हैं। इन्हें खुश करने के लिये एक अपनी भी सही। अबकी सब कर्ज इकट्ठे अदा कर दूँगा। उसने इस बार स्वयं रुद्रपुर के शिवजी के प्रति एक कठिन मनौती मानी और कहा, यदि मेरी लुगाई अच्छी हो गई, तो मैं अपने घर से आपके मन्दिर तक मुँइपरी चलकर आपकी पूजा करूँगा। उसने किसनों को इस प्रकार की मनौती पूरी करते देखा था।

ओझाओं से पिण्ड छूटते ही, सुखिया को शारीरिक आराम मिला। वह अच्छी होने लगी, और नवें में दो चार रोज जाते-जाते भली-चंगी हो गई। मन्नत के निमित्त बचाया रुपया ओझाओं की भेंट और अपनी पेट-पूजामें समाप्तप्राय था।

इसी बीच एक दिन गाँव के लोगों ने तड़के ही देखा कि दुखिया अपने घर से मुइँपरीं चलते निकल रहा है। वह हाथ-पैर फैलाकर पेट के बल पृथ्वी पर साष्टांग लेट जाता, हाथों की उँगलियों से आगे चिह्न खींच देता, पुन. उस चिह्न पर पैरों को रखकर खड़ा होता और प्रथम क्रिया की पुनरावृत्ति करता। इसे देखने के लिये जगह-जगह लोगों की भीड़ इकट्ठी हो जाती।

एक मील जाते-जाते भूमि ने उसकी परीक्षा लेनी आरम्भ कर दी। मार्ग में कहीं कीचड़ उपस्थित करती। कहीं धूल। कहीं

शूल और कहीं कंकड़ियाँ। दुखिया एक लँगोट पहने इस कठिन व्रत की पूर्ति कर रहा था। उसके शरीर के सामने का भाग क्षत-विक्षत होता चला जा रहा था। इस चाल से अभी तो मैं एक ही मील आ पाया हूँ, सवा मील और चलने हैं, तब कहीं व्रत पूरा होगा। चला जाता नहीं। अब मैं कैसे पीछे पैर रखूँ। दिन ने सब पर मेरी बात जाहिर कर दिया। क्यों नहीं मैंने रात्रि के आवरण में किया? कोई देखता तो नहीं। जहाँ तक सँपरता, शरीर साथ देता, मैं आसानी से भुँइपरी जाता, फिर छोड़ देता और खड़े होकर चला जाता। कितना मूर्ख मैं हूँ? भगवान् को जबरदस्ती अपने बीच में खींचकर मनौती भाखकर लोग उसे कितना धोका देते हैं? मिठाई, दूध, बकरा, गाँजा, शराब, सिर के बाल, गंगा-जल इत्यादि चढ़ाकर अपनीवाली कराना चाहते हैं। यदि सचमुच भगवान् खाना शुरू कर दें, तो कोई प्रसाद तक न चढ़ावे। जबानी जमा-खर्च सब करते हैं। ईश्वर! मेरीवाली कर दो, मेरे दुश्मन का सर्वनाश कर दो, मेरा मुकदमा जिता दो, तो मैं तुम्हें रेशम के वस्त्र पहनाऊँगा, शृंगार करूँगा, चाँदी-सोने के रुपये तुम्हारे मंडप में जड़ा दूँगा। यदि साधारणतः वह बात हो गई, तब तो राम अच्छा, वरना उससे दुश्मनी ठन गई, उस पर गालियों की बौछारें पड़ने लगीं। हम देव को घूस देकर नाजायज फायदा उठाना चाहते हैं। उसमें अपनीवाली कराना चाहते हैं। इन्सान अपनी ही तरह हर जगह सोचता है। अपना विधान परमात्मा पर भी लागू करता है।

परन्तु अब तो मैंने पैर बहुत आगे बढ़ा दिया है। दुनिया जान गई है। चुड़ैल औरत ने दो-दो बार मनौतियाँ मानीं, परन्तु उन्हें पूरा नहीं किया। उसकी भी क्या गलती? रुपये-पैसे

का खर्च था, नहीं मिला, क्योंकि धन गरीबों का जन्मजात शत्रु है जो। परन्तु मैंने तो अपनी देह लगाना चाहा, उसका भी पूरा उपयोग नहीं कर पा रहा हूँ। मुझे चाहता था, मोटे टाट का टुकड़ा पहनकर अपनी मनौती को पूरा करता; परन्तु गरीब का पैसा और अकल, दोनों साथ नहीं देते। दोनों मन्नतों की भाँति इसे भी अधूरी छोड़ दूँ? कौन जानता है, सब साथ ही पूरा करूँगा। कोई पूछेगा, कह दूँगा, एक मील के लिये भाखा था। परन्तु इस प्रकार अपने को, अपने व्रत को और सर्वोपरि भगवान् को भुलावा देना है। इसी उधेड़-बुन में वह लगभग आधे मील और खिसक गया। पहिले कोमल चर्म ने सम्बन्ध-विच्छेद किया, तदनन्तर रक्त ने और अंत में तथाकथित मांस ने भी। गरीब तथा निर्बल की देह भी साथ नहीं देती। इस प्रकार उसने खून में लथ-पथ दो मील पूरा कर लिया। क्वार का महीना था, भगवान भास्कर अपने तीक्ष्ण कर-निकर से प्राणिमात्र को व्याकुल कर रहे थे। उनको क्या पड़ी थी कि दुखिया के लिये अपना तर्केस बन्द करते। मुश्किल से शिव-मन्दिर दस-पाँच डग रहा होगा कि अत्यधिक रक्तस्राव और असह्य ताप से वह होश खो बैठा। बहुत देर तक उसका शरीर पड़ा रहा। किसी को क्या पड़ी थी, जो लावारिस को हटाता। परन्तु जब कौए शिव-मन्दिर के समक्ष दुखिया के जीवित एवं मृत होने की डाक्टरी जाँच के लिये, और उसकी आँखों की पलकों को अपने चोंच से हटाकर देखने का प्रयत्न करने लगे, तो कुछ दयावान् इस अनर्थ को बरदाश्त न कर सके। और उसे लादकर उसके घर पहुँचाये। पति की दशा देखते ही सुखिया दहाड़े मार-मारकर रोने लगी। उसने यह क्या किया? यह क्या हो गया? किसने यह सुझाया? किसकी मनौती माना था?

सतनारायन महाराज, दो दो मन्नतें मानीं, पैसों की कमी से उन्हें पूरी न कर पाई। परन्तु जब पैसे पूरे होने को आये, मैंने मनौतियाँ पूरी करने की ठानी, तो तुमने मुझे बीमार डाल दिया। पैसे सबके-सब खर्च हो गये ? वे ज्यों की त्यों रह गईं। क्या आज उसी का फल भोग रही हूँ ? सरजू माई, यदि मेरा आदमी अच्छा हो गया, तो तुम्हारी पूजा करूँगी, और होनेवाले बच्चे को तुम्हारी गोद में स्नान कराकर, तुम्हारे चरणों में प्रसाद चढ़ा दूँगी। कदाचित् वैसे ही, जैसे पुजारी देवता को स्नान कराकर, उसपर फूल, बिल्वपत्र चढ़ा दोने में रखा गुड़ या बताशा भोग लगा देते हैं और कथित उच्छिष्ट मूल प्रसाद वापस लेते हैं। रूढ़ि में जकड़ा मानव लकीर का फकीर हो जाता है। अतः वह परमुखापेक्षी होकर निरुत्साह, आलस्य एवं अकर्मण्यता की ओर बढ़ता जाता है।

दो घंटे पश्चात् दुखिया की आँखें खुलीं। धान के पेटारी की रस्सी से बुने खटखटे पर वह लेटा हुआ था। उसने सुखिया की आँखों को गरम लोहे के तवे की भाँति लाल देखा, जो उसके मुख-मण्डल को झुलसकर काला कर दिये थे। उसने पत्नी को सम्बोधन किया, "मैं अपनी मूर्खता का फल भोग रहा हूँ। कहीं तुम ऐसा न कर बैठना ?"

"तुमने क्या किया था ?"

"तुम्हारी देखादेखी मनौती माना था। कहा है, देखा-देखी पुण्य, देखादेखी पाप।"

"किसके लिए ?"

"यह न पूछो। परन्तु मेरे अच्छे होनेके लिए अब हरगिज न मानना। यदि मानी, तो इसका फल अवश्य भोगोगी।"

"ऐसा क्यों कह रहे हो ?"

"क्योंकि मनौती मानकर, हम भगवान् में, उसके न्याय में

अविश्वास ही नहीं करते, अपितु उसे और अपने को धोखा देते हैं। जीव अपने कर्मों का फल, किसी न किसी रूप में, अवश्य भोगता है, चाहे इस लोक में या परलोक में।"

"परन्तु ?"

"तब तुमने मान लिया है। अबकी ब्याज-समेत फल पाओगी।" कहते दुखिया पुनः संज्ञा-हीन हो गया।

पति की वाणी सुन और दशा देखकर, पत्नी पर अचानक मार्मिक आघात पहुँचा। उसका नवाँ महीना चल रहा था। इस आकस्मिक मानसिक आघात का गर्भ के अर्भक पर भी प्रभाव पड़ा। वह गतिशील हो गया। सुखिया प्राणघातिनी पीड़ा से छटपटाने लगी। उसकी साँस बन्द होने लगी। वह मृत्युयंत्रणा का अनुभव करने लगी। कदाचित् यह आनेवाले किसी भयानक तूफान के पहिले का तिनका था। वह कितनी देर तक इस मूर्छावस्था में पड़ी रही, उसे मालूम नहीं हुआ। परन्तु उसके कर्ण-कुहरों में पड़ी एक कराह, और पानी-पानी की चिल्लाहट। उसे होश हुआ, तो पहचानी, यह उसके पति की आवाज थी। रात को सन्नाटा था। हवा सोम की भाँति साँय-साँय करके चल रही थी। स्नेह-विहीन दीपक की लौ बड़े जोरों से फफकी। सुखिया ने उठकर फौरन् तेल की कुप्पी से बचा-खुचा तेल दीप में उँड़ेला, और पति को पानी पिलाया।

दुखिया की दशा दिन-प्रतिदिन शोचनीय होती गई। सुखिया की बीमारी से जो कुछ बचा था, वह दुखिया के दुःख ने ले लिया। परम्परानुसार ओझों और दैवज्ञों का बोलबाला रहा, परन्तु कंक गए कंक के पास; तो कंक होकर लौटे। अब इनके पास रह ही क्या गया था, जिससे इनका आवर्तक कर भरा जाता रहे। कथित मंत्रों द्वारा फेंकी गई राख और भभूत ने दुखिया के घावों को भरा नहीं, अपितु

फैलाकर बिखरे घावों को जोड़ दिया। मक्खियों ने इस धर्म-कार्य में ओझों का हाथ बँटाकर, इनकी उपचार-पद्धति को अमर कर दिया।

एक-एक दिन लुढ़कते एक मास पूरे हो गये। एक दिन सुखिया को पुत्र-रत्न पैदा हुआ। उसकी 'कहाँ-कहाँ' से मड़ई भर उठी। दुखिया आनन्द-विभोर हो उठा। परन्तु उसके विकराल घावों ने उसे पंगु बना दिया था। निर्बलता अनुकूलता न ला सकी। पड़ोसियों के सहारे सुखिया तीन दिन के भीतर ही सौर-गृह से निकल आई। नवजात शिशु शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की भाँति दिन-दिन बढ़ रहा था, परन्तु उसका पिता कृष्णपक्ष के द्विज की भाँति म्लान होता जा रहा था।

सुखिया को सन्देह हुआ, क्या मेरी पति के सम्बन्ध में मानी हुई दोनों मन्नतों को पूरी न करने से मेरे स्वामी की दशा निम्नतर हो रही है ? इसमें मेरा क्या दोष है ? इनके होते तीसरी भी मान दिया। किसी को भी न निभा सकी। अब मैं एक क्षण भी रुक नहीं सकती।

अगहन का महीना था। निशि अपना पार्ट अदा करके पर्दे के अन्दर छिप गई थी कि सुखिया अपने बच्चे को अपने अंचल में छिपाकर उठ खड़ी हुई। पैर बढ़ाते ही दुखिया ने टोका, "कहाँ चली ? मनौती मनाने—मुझे छोड़कर; अच्छा जाओ, प्रसाद चढ़ाकर जल्द लौटना, देर न करना; वरना भेंट न होगी। आखिर मेरा कहना तुमने नहीं ही माना ?"

पति में अकस्मात् यह परिवर्तन देखकर वह भौंचक हो गई। इन शब्दों को सुनकर वह एक बार डर-सी गई। परन्तु वह तो उसी के कल्याणार्थ जा रही है।

"मैं अभी आई।" कहते पति की ओर बिना ताके, वह सुबह-सुबह सरयूजी की ओर बढ़ी, जो उसके घर से एक मील

की दूरी पर बह रही थीं। उसके पहुँचते, बाल-रवि की कोमल किरणों ने कलकलनादिनी के अनन्त अम्बु-राशि को आव-रित कर लिया था, मानो सरिता-देवी कुंकुम-परिधान धारण किये प्रसन्न-वदन, भक्त के भेंट ग्रहण करने के निमित्त खड़ी मुस्करा रही थी।

जाड़ा काफी पड़ रहा था; परन्तु अपनी धुन में सुखिया को जैसे लग ही नहीं रहा था। बच्चा भी माँ के इस कार्य की निर्विघ्न समाप्ति में, बिना रोये, पूर्ण सहयोग प्रदान कर रहा था। सुखिया ने बच्चे को किनारे पर सुलाकर स्नान किया और पिलखती साड़ी धारण किया। सरयू माँ की अक्षत, बिल्व-पत्र, तुलसीदल और गेंदा फूलों से पूजा कर, सरयू की गोद में बच्चे को नहलाने और प्रसाद चढ़ाने ले चली। अभी जल के तल तक उसका हाथ पहुंचा ही था कि एक लहर शिशु के ऊपर से होकर निकल गई, मानो सरिता स्वयं इस भेंट के निमित्त लालायित थी। माँ और आगे बढ़ी, दूसरी लहर और अधिक झोंके से आकर पार कर गई। माँ ने बच्चे को तीसरी एवं अंतिम डुबकी लगाई, यह कहते कि माँ! मेरे इस प्रसाद को स्वीकार करो। यह कहना था कि शिशु का नवनीत-सा कोमल शरीर हाथ से छलक गया, मानो वह स्वयं मचलकर हाथ पसारे सरयू माँ की गोद में चला गया। सुखिया, सरयू माँ से प्रसाद पाने के निमित्त पुनः हाथ फैलाये, चिल्लाते आगे बढ़ी; परन्तु बेकार; स्नानार्थियों ने उसे खींच लिया। वह रोते धोते रिक्तहस्त घर पहुंची, तो देखा, पति के नेत्र और मुंह विस्फारित हैं, मानो वे मनौती का महाप्रसाद पाने के निमित्त अंतिम हठ धारण कर लिए हैं!

—:o:—

कहानी चाय पिलाई !

"साहब ने याद किया है।" चपरासी ने कमरे में प्रवेश करते अपनी जातिगत अशिष्टता को शिष्टता की सीमा में बाँधते कहा।

"किसे ?" मैंने टेबुल पर पड़े पेपर्स की ओर दृष्टि किए ही, उत्तर रूप में, प्रश्न किया।

"आपको।"

"मुझे ?" इतने में क्लाक ने समय का सदुपयोग करने के लिए चार बार सावधान किया।

"जी, हाँ।" कहते वह तुरन्त चलता बिना इस भय से कि कहीं मैं दूसरा काम उसके सुपुर्द न कर दूँ।

मैंने कागजों से तात्कालिक सम्बन्ध - विच्छेद करते, बीच के समुद्ररूपी कमरों को मारुत-सुत की भाँति लाँघते, द्रुतगति से साहब के कक्ष में प्रवेश किया। मुझे देखते ही उनकी आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं और उनके प्रशांत मुख पर हास्य की एक रेखा खिंच गई। उन्होंने अपने टेबुल के चतुर्दिग बैठे पाँच सम्भ्रान्त आगन्तुकों में से एक की ओर तर्जनी से इंगित करते कहा, "मुझे अत्यंत आह्लाद हो रहा है आज आपको अनोखेलालजी द्विवेदी, सम्पादक साप्ताहिक 'सृष्टि' से परिचय कराते हुए।"

मेरी दृष्टि एक क्षीणकाय व्यक्ति पर, जिसे कुर्सी परिवेष्टित किए हुए थी, पड़ी। कृपलानी-कट नासिका के गहरे

कोनों में सटी सर्प की भाँति दो छोटी, चमकीली आँखें, पतले सम्पुट अधर, दाड़िम-से दंत, धँसे कपोल और लम्बे कपाल उनके रक्त से विरक्त मुखमण्डल को सुसंगठित किए थे। काष्ठबद्धता के रोगी की भाँति उनकी जबान सफेद थी, जो कैंची की भाँति चल रही थी, परन्तु प्रतिभा उनकी, जीधकार के सदृश्य, चतुर्दिग्गामिनी प्रतीत होती थी।

"आप ही कहानी-लेखक श्री परिहार हैं? आपसे मिलकर अपार हर्ष हुआ। अब तो मैं आपको अपने साप्ताहिक ही में बाँध रखूँगा।" मेरे दायें हाथ को खींचते, वाम पार्श्व-स्थित कुर्सी पर बिठाते सम्पादकजी ने कहा और इस प्रथम मिलन की अप्रत्याशित अत्यधिक आत्मीयता के मनोविज्ञान के अध्ययन का एक अपूर्व अवसर उपस्थित किया।

"हाँ, सेवक ही है, जो लिखने का बाल - प्रयासमात्र कर रहा है। लेखक तो भ्रमर होते हैं। जो एक पुष्प का नहीं अनेकों का रसास्वादन करते हैं।" मैंने उत्तर दिया।

"परन्तु जलज अपने कोषों में उन्हें कभी बन्दी भी बना लेता है।"

"तब तो विशेष सतर्कता की आवश्यकता है; क्योंकि तनिक असावधानी आबद्ध कराकर ही दम लेगी।"

"अजी, डरिए नहीं, पड़ोस का धतूरा भी काम आता है।"

"डरना अपनी बुरी नीयत से चाहिए। अच्छा, पत्रकारिता का अनुभव आपको कब से है?"

"दीर्घ काल तक दैनिक 'वियोग' का सहायक सम्पादक रहा।"

"इतने प्रसिद्ध पत्र का?" मैंने साश्चर्य पूछा।

"जी हाँ, अपने लेखों द्वारा मैं वहाँ खींच लिया गया था।"

"तदोपरान्त?"

"प्रधान सम्पादक से पारिश्रमिक के लिए न पटा। फलतः

प्रतिद्वन्द्वी दैनिक 'संयोग' से सम्बन्ध स्थापित हो गया।

"संयोग तो अंतर्राष्ट्रीय प्रधान पत्र हो रहा है। तत्पश्चात् ?"

"पैसे ने वहाँ भी व्यवधान उपस्थित किया।"

"इतना विशाल अनुभव है आपका ! तब तो दैनिक वियोग और संयोग की स्वानुभूति सृष्टि को सफल करके रहेगी। मेरे योग्य सेवा ?"

"कभी-कभी अपने रसमय लेखों एवं कहानियों से पूरित करके सृष्टि की सृजन-शक्ति बढ़ाते रहिये।"

"इस स्वागत के निमित्त हार्दिक धन्यवाद ! परन्तु सम्पादकों के यहाँ मेरे-ऐसे बाल-कहानीकारों के हेतु, पत्र में स्थान रिक्त नहीं रहता।"

"यह आपकी भूल है।"

"कैसे मानूँ, मैंने कितनी कहानियाँ, पोस्टेज के साथ चोटी के दैनिकों में भेजीं परन्तु वे प्रकाश में आने की कौन कहे, इस्लामी रूह की भाँति लौटी ही नहीं। कदाचित् कयामत के दिन उनका हिसाब हो।"

"बड़ों की बातें बड़ी होती हैं। मेरा ध्येय सृष्टि द्वारा इस जनपद की समस्यायें हल करनी हैं। मेरे लिए तो स्थानीय लेखकों का सहयोग ही अपेक्षित है।"

इतने में होटल के बेयरे ने चाय तथा टोस्ट से भरी ट्रे लाकर वहाँ बैठे महानुभावों के समक्ष लगा दिया। उपस्थित वृन्द ने भोज्य एवं पेय पदार्थों के साथ पूर्ण न्याय करने में तनिक संकोच न किया। ताम्बूल ग्रहण करने के पश्चात् सम्पादक - प्रवर ने डकारते मुझसे कहा, मैं कल आपके यहाँ स्वयं उपस्थित हूँगा, आपकी कहानियों को लेने के निमित्त।

"अवश्य, मेरी कुटिया का द्वार और टेबुल अतिथियों के

स्वागतार्थ सर्वदा खुला रहता है ।"

दूसरे दिन प्रातःकालीन कृत्यों से निबटकर मैं कुर्सी पर बैठा जलपान की बाट जोहते समाचारपत्र देख रहा था कि द्विवेदीजी आ धमके । उनके स्वागतार्थ समय - सूचक यंत्र ने तत्काल संगीत के सरगम सुनाए । सप्तम स्वर की समाप्ति के साथ जलपान भी प्रस्तुत हो गया ।

"जलपान की ऐसी क्या आवश्यकता है ? अभी-अभी घर से आ रहा हूँ" सतृष्ण नेत्रों से पात्रों की ओर देखते उन्होंने कहा ।

"क्यों नहीं है ? अतिथि का प्रातःकालीन आगमन ही इस सत्य की स्वयंसिद्धि है ।" पात्रों को उनके समक्ष सरकाते मैंने उत्तर दिया ।

"आतिथेय की इच्छा-पूर्ति करना अतिथि का कर्तव्य हो जाता है ।" कहते भूखे बाज की भाँति वे कपोत-रूपी जलपान पर टूट पड़े और आध घण्टे के अन्दर अनिच्छा प्रकट करते हुए भी मध्याह्न-भोजन से मुक्ति प्राप्त कर लिये ।

"आपके 'सृष्टि' की जन्मतिथि क्या है ?" पान देते मैंने छेड़ा ।

"आज तीसरा अंक निकला है ।" तीनों प्रतियाँ मेरी ओर बढ़ाते उन्होंने उत्तर दिया । मैंने सरसरी निगाह से उनके पृष्ठों को उलटा-पलटा । सोलह पृष्ठों का सर्वांगसुन्दर पत्र था ।

"इनका तीन चौथाई कलेवर तो सम्मनों ने ही घेर रक्खा है ?" मैंने जिज्ञासा की ।

"हाँ, इन्हीं पर प्रकाशन का व्यय निर्भर है ।"

"शेष का अर्द्ध भाग डी० एम० की अभ्यर्थना से पूर्ण है ।"

"बड़े ही योग्य शासक हैं । मुझसे मिलते ही उन्होंने विज्ञापनों को देने तथा मेरी सुरक्षा का भार अपने सिर ले लिया ।"

"शेषांश तो पूँजीपतियों, स्थानीय निकायों तथा पुलिस की कटु आलोचनाओं से भरा पड़ा है।"

"ये इसी के पात्र हैं। चार सुनाओ, तो उनके कानों पर जूँ नहीं रेंगती है।"

"पत्र का अन्य व्यय-भार कौन वहन करता है ?"

"इस प्रोपेगैंडा के युग में, मेरी प्रशंसा के इच्छुक, उसके अनेक पैट्रन्स हैं।"

"कहानियोंके लिए पत्रमें कोई स्तम्भ दिखाई नहीं देता।"

"इसकी क्या चिन्ता ? एक स्थापित कर दूँगा। नये लेखकों से तो पैसे लेकर छापूँगा, परन्तु आपकी फ्री छपेंगी।"

"इस महती कृपा के लिए हार्दिक धन्यवाद।"

"मैं सिद्धान्तवादी नहीं, कर्तव्यपरायण हूँ। लाइये, जितनी आपने लिखी हैं, सब एक-एक करके प्रकाशित कर दूंगा।"

उनके आग्रह में एक ऐसा आकर्षण था, जिसकी ओर खिंचे बिना कोई कहानीकार नहीं रह सकता, मेरी क्या बिसात। नौ कहानियों की पांडु-लिपि, जिसे मैंने पुस्तक रूप देने के निमित्त रखा था, दे दिया।

"आपकी लिखावट बड़ी सुन्दर है।" मेरी भावना को कोमल स्पर्श देते उन्होंने कहा।

"इस तुच्छ के प्रति आपकी उच्च धारणा है, देखियेगा, गधे के सर की सींग न बन जाय वह। क्योंकि मेरे पास इसकी अन्य प्रतिलिपि नहीं है।" मेरे मुख से अनायास निकल पड़ा।

"खातिर-जमा रखिये, जान के पीछे रखूंगा।" यह कहते सम्पादकजी कहानियों के साथ बिदा लिए।

× × ×

'सृष्टि' का सप्ताहांक, तीन-तीन, चार-चार सप्ताहों पर, कभी निकल आया करता, परन्तु किसी अंक में मेरी कौन कहे, कोई भी कहानी नहीं निकली। द्विवेदीजी रोज ही मुझसे मिलते

और अधिकतर मेरे यहाँ चाय-पानी भी लेते। चलते समय टोकने पर सम्पादकीय विशिष्ट वाकपटुता से अगले अंक में प्रकाशित करने का आश्वासन देते रहते। इस प्रकार दिवस सप्ताह और मास में परिणत होने, छः मास व्यतीत हो गये। एक दिन भोजनोपरान्त मैं सोने की तैयारी कर रहा था। रात्रि शैशवावस्था के अन्तिम चरण को पहुंच रही थी। कार्तिक का कृष्ण पक्ष था। जाड़े के मारे शृगालों की भयंकर चीत्कार नगर के बाहर होते हुए भी मेरे निवास-स्थान के समीप हो रही जान पड़ती थी। सड़कें जनशून्य थीं। मोटरों का आवागमन भी बन्दप्रायः था। अकस्मात आंखें घड़ी की ओर उठ गईं, जो अपने दोनों हाथों से आठ बजकर दस मिनट बतला रही थी। ठीक इसी समय किसी ने बाहरी दरवाजे को जोरों से पीटा और सांकल खड़खड़ाया। फिर मेरे कर्णकुहर में एक लड़खड़ाती आवाज पड़ी :—

"ज ऽ रा ऽ ऽ दर ऽ वा ऽ जा ऽ ऽ को ऽ लो ऽ ऽ !"

"कौन है, जो लावारिस मकान की तरह दरवाजे को पीट रहा है ?"

"बा ऽ ई ऽ मैं तो द्वि वे ऽ ऽ दी ऽ ऽ !"

दालान में लगी स्विच दबाकर विद्युत् का प्रकाश करके मैंने दरवाजा खोला। वह मुझे देखकर अट्टहास करते बोले "हाँ ऽ ऽ ऽ आखिर तुम ऽ ऽ से भेंट ऽ हो ही ऽ गई। का ऽ ना ऽ यहीं का ऽ रूं ऽ गा ऽ।

कमरा दुर्गन्ध से भर गया। मैंने नाक सिकोड़ ली।

"आज क्यों इस तरह रुक-रुककर बोल रहे हैं ? अन्दर चले आइए।"

"वह अनसुनी करते लड़खड़ाते आगे बढ़े और गिरते-पड़ते आकर मेरे शयनागार में कुर्सी पर बैठ गये

सामने टेबुल पर थाली लग गई, उस पर वे निस्संकोच हाथ साफ करने लगे। अब वह स्वस्थ-से दिखलाई पड़ रहे थे।

"आपकी कहानी आज के अङ्क में प्रकाशित हो गई।" उसे वे मेरी ओर बढ़ाते बोले।

"प्रकाशित हो गई, कहाँ?" अंक उलटते पलटते, आश्चर्यमुद्रा में मैंने पूछा। द्विवेदीजी ने पृष्ठ पर उँगली रखते दिखलाया। चौथाई पृष्ठ में उसका अष्टांश छपा था, और क्रमशः करके छोड़ दिया गया था।

"अंशतः ही क्यों?"

"इस अंक में पूरा स्थान न दे सका, अगले में निकल जायगी।"

"आपको पायोरिया हो गई है?"

"नहीं तो।"

"जब आप आए, आपकी जबान लड़खड़ा रही थी। आँखें भी सुर्ख हो रही हैं।"

"दिन में कुछ बुखार आ गया था। मालूम होता है, इस वक्त खा लेने से आँखें लाल हो गई हैं।"

"पैर क्यों बेकाबू हो रहे थे?"

"ज्वर की कमजोरी से।"

"क्या 'सृष्टि' मासिक हो गई?"

"नहीं, इसकी आर्थिक स्थिति डावाँडोल है। प्रेस बिना पैसे के सुनता नहीं।"

"सम्मनों से तो पर्याप्त प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त आप द्वारा प्रशंसा के इच्छुक भी तो हाथ बँटाते हैं।"

"एक दिन ए० डी० यम० की आलोचना कर दी, सम्मन बन्द हो गये। पूँजीपति अवसरवादी होते हैं। उनकी माया,

तो पाया। फिर भी कुछ मिल ही जाता है।"

"जैसा मैंने सुना है, आपकी आय के अन्य स्रोत भी हैं।"

"हाँ, हैं, परन्तु छपाई, कागज, पोस्टेज आदि में स· निकल जाता है। इसके साथ मेरा निजी व्यय भी लगा है।"

"तब व्यय के अन्य स्रोत अवश्य खुल गये हैं।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं।"

"कल आप सुन्दरी के कोठे के नीचे नाली में पड़े थे। आज सबेरे आपके सहयोगी शुक्लजी कह रहे थे।"

"ठोकर लग गई, सँभल न पाया।"

"आप विक्षिप्तावस्था में पड़े थे। शरीर दुर्गन्धपूर्ण था।"

"मर्मस्थान पर चोट लग गई थी और लुढ़कने से नाली की बदबू बदन पर फैल गई थी।"

"बेहोशी में आप सुन्दरी को अपशब्द कह रहे थे।"

"एक साँड़ ने मुझे खदेड़ा, सुन्दरी की सा.ढ़ी ने मुझे गिरा दिया, मैं गाली देने लगा।"

"सुन्दरी का नाम तथा निवास-स्थान कैसे ज्ञात हुआ?"

"क्या आप मुझ पर सन्देह कर रहे हैं? शुक्लजी की बातों पर विश्वास करके—वह सृष्टि को रसातल पहुँचाकर, अब मेरे स्वर्गारोहण की तैयारी करा रहे हैं।"

"ऐसे स्थान पर च्युत होना सन्देह से परे नहीं है।"

"यदि सम्पादक ऐसे प्रसिद्ध कलाकार का नाम तथा निवासस्थान न जाने, तो उसका नाम सार्थक नहीं।"

"आज आपने कैसे कष्ट उठाया?"

"कहते शर्म मालूम होती है।"

"पड़ोसी और मित्र के मध्य लज्जा का समावेश कैसा?"

"एक दूर के माननीय सज्जन ने कुछ धन, सृष्टि की उत्तरोत्तर उन्नति के लिए, देने को कहा है। यदि चार रुपये रेलभाड़ा

के मिल जाते, तो सचित्र आपकी भविष्य में और भी सेवा करने योग्य हो जाती।"

"आपने ऐसे समय मेरी परीक्षा ली, जब मेरा हाथ रिक्त है।"

"कल सवेरे ही जाना है। कहीं से लाकर दे दीजिए।"

"यदि मिल गया, तो ट्रेन छूटने के पहिले पहुँचा दूंगा।"

सम्पादक-प्रवर चलते हुए। मुझे अपने घर आये अतिथि की कटु आलोचना पर अत्यधिक क्षोभ हुआ। कोई कुछ करे, किसी के व्यक्तिगत जीवन से मुझे मतलब? इस कालिमा का प्रक्षालन करने के लिए दूसरे दिन सवेरे मैं चार रुपये लेकर उनके घर पहुँचा। वहां उनकी रखी मजदूरिन से पता चला कि गत आधी रात तक वे कई मित्रों के साथ खाते-पीते रहे जिसका साक्षी उनके निवासकक्ष में बिखरे मछली के काँटे, गोश्त की हड्डियां और सुरा की रिक्त बोतलें दे रही थीं। लेखक को अपनी रचना उतनी ही प्रिय होती है, जितनी कामी को वाम, लोभी को दाम और भक्त को राम। वस्तुस्थिति का अवलोकन कर मुझे शुक्लजी द्वारा सुनाई तथा मेरे वासस्थान की घटनाओं की सत्यता में तनिक सन्देह नहीं रहा। मुझे हार्दिक ग्लानि होने लगी। कहां ऐसे दलदल में फंसा! कैसे पुस्तक की पाण्डुलिपि प्राप्त की जाय। कुछ दिन पहिले एक आलोचक-प्रवर प्रकाशित कराने का आश्वासन देते, उसे दो वर्षों तक बन्दिनी बनाये रहे। बड़ी आरजू-मिन्नत के बाद छोड़ी। परन्तु ताड़ से गिरा खजूर पर अटका। आलोचक के पंजे से निकलकर सम्पादक के फंदे में फँसा। यदि इस बार बिल्ली ने मुर्गे को बख्शा तो वह बाग़ होकर ही रहेगा। सम्पादक-जी नगर से ऐसे गायब हो गए, जैसे जमींदारों से जमींदारी। उनके खोजी, मेरी तरह सैकड़ों थे, जिनसे उनके निवासस्थान

पर भेंट हो जाने का सौभाग्य प्राप्त हो जाता था प्रतिदिन प्रातः-संध्या। उनमें प्रेसवाले धमकी दे रहे थे मुकदमा दायर करने की, क्योंकि उनका हजारों का पावना था। कागजवाला अलग चिल्ला रहा था। लेखक-आलोचक यहाँ तक कह रहे थे कि उनके लेखों तथा पुस्तकों को द्विवेदीजी अपने नाम से प्रकाशित करा देते हैं। होटल के बेयरे ने मुझसे अपनी बिल पकड़वाई, तो सैकड़ों रुपए सुरा का दाम बाकी था। कुछ तो यहाँ तक कह रहे थे कि नगर की वेश्या-विशिष्ट सुन्दरी उनपर हरजाना दाखिल करने जा रही है। पन्द्रह दिनों के अथक परिश्रम के पश्चात् निराश होकर एक दिन सुबह छः बजे ही मैं उनके घर पहुँचा, वह टूटे बँसखटे पर पड़े एक फटी चादर से तन ढके खर्राटे भर रहे थे। गरज बावली होती है। समय-असमय का विचार किए बिना ही मैंने झकझोरकर उन्हें जगाया। वह उठते ही झल्लाये—

"आप तो हिटलर की भाँति मेरे पीछे पड़े हैं! आपकी कहानियों को तो एक-एक करके 'सृष्टि' में प्रकाशित कर ही दूँगा। वे 'सृष्टि' के लिए गौरव की वस्तु हैं।"

"अब मैं समझा, इनकी विशिष्टता ने ही इतना विलम्ब किया। जब आपकी दृष्टि में इतनी ऊँची हैं, तो इनका पुस्तक रूप देना ही श्रेयस्कर होगा।"

"कहाँ मुद्रित कराइयेगा? कोई प्रकाशक मिल गया है क्या?"

"आपके सिवा मुझे कौन जानता है? परन्तु प्रयाग में मुद्रित कराने का इरादा है। चाहता था, पैसे न लगें, चाहे मुझे कुछ मिले या न मिले।"

"क्या मैं प्रयत्न करूँ? परन्तु समय लगेगा।"

मैंने देखा, आया चूहा बिल में घुस जाना चाहता है।

"आपका आशीर्वाद चाहिये। अभी दे दीजिए, मुझे दस बजे की ट्रेन से आज ही जाना है।"

सम्पादकजी अँगड़ाइयाँ लेते अन्यमनस्क हो उठे। दो घण्टे तक टूटी आलमारी और सन्दूक में बिखरे एक-एक कागज के साथ माथापच्ची करने के पश्चात्, रद्दी कागज की भग्न टोकरी से, एक पाँडुलिपि मिली। मुझे लगा, जैसे किसी यात्रा पर जाते, फेल हुई कार स्टार्ट हो गई। हर्षातिरेक में मैंने उलट-पलटकर देखा, परन्तु वह मेरी ही तरह किसी आशावादी अभागे की थी।"

"अब कहाँ खोजा जाय?" मैंने जिज्ञासा की। कुछ देर तक सरपर हाथ रखे स्मरण - शक्ति के आवाहन करने की मुद्रा बनाये वह बोले:—

"हाँ, मुझे याद पड़ा, वह प्रेस में छपने के लिये चली गई थी।"

"तब चलिये, वहीं से ले लिया जाय।"

सम्पादकजी ने अनेक आनाकानी की, परन्तु मैं पिण्ड छोड़नेवाला नहीं था। अवसर बार-बार नहीं आता, अतः उन्हें प्रेस आना ही पड़ा। वहाँ प्रेस के भूतों ने हीला-हवाली करते, खोजना प्रारम्भ किया। बड़ी कठिनाई के बाद उन्होंने बतलाया कि वह तुम्हें लौटा दी गई थी।

"अब?"

"मैं खोजकर लौटा दूँगा। कदाचित् विशेषांक के लेखों के साथ बनारस भेज दी गई हो?"

मैं मुँह लटकाये वहाँ से लौटा। देखते-देखते दूसरे छः महीने बीत गये। एक दिन सेठ गोवर्धनदास की बैठक में उनसे आकस्मिक भेंट हो गई। आठ-दस सम्भ्रान्त व्यक्ति बैठे हुये थे। सम्पादक-प्रवर अपनी कुशलता, व्यंगात्मक शैली

में प्रदर्शित कर रहे थे, हँसी का फोवारा छूट रहा था। बात के क्रम में उनके सहयोगी शुक्लजी, जिन्हें द्विवेदीजी अपने स्वर्गारोहण में सहायक बतलाये थे, पूछे,

"भाई द्विवेदी, भाभीजी को आये आज महीनों हो रहे हैं, परन्तु दावत देने की कौन कहे, आपने भनक तक न लगने दी।"

"ढिंढोरा पीटने की क्या बात थी? दावत अवश्य दूँगा।"

"क्या इन सवारों में गिनती गिनाने का मैं भी मुस्तहक हो सकता हूँ?" मैंने कहा।

"आप उस दिन के विशिष्ट अतिथि रहेंगे।"

"शुभस्य शीघ्रम्।"

"अगले सप्ताह में सोमवार को।"

"भाई परिहार, आपने उलाहनों से मेरे नाकों दम कर दिया था। क्या पांडुलिपि मिल गई?" शुक्लजी ने टोका।

"हाँ, मिल गई थी।" द्विवेदीजी ने उत्तर दिया।

"क्या तदनन्तर दुर्घटना-ग्रस्त हो गई?" मैंने घबराहट में पूछा।

"मैंने आलमारी पर............"

"रख दिया था? फिर क्या हुआ?" बीच में बात काटते मैंने प्रश्न किया।

"लौटाने के लिये एक दिन खोजने लगा, तो वह.......”

"नहीं मिली। आपने किसी से पूछा?"

"बच्चों, नौकर तथा दाई सबसे, परन्तु उन्होंने ......"

"अनभिज्ञता प्रकट की। और श्रीमतीजी से..........."

"पूछा था, उन्होंने कहा कि रद्दी कागज समझकर चाय बनाने के लिये आग सुलगा डाली।"

मैं स्तब्ध हो गया, जैसे मेरा सर्वस्व खो गया। बैठी मित्र-मंडली दूसरा ठहाका लगा बैठी मेरी चुप्पी पर और

सम्पादक-प्रवर की श्रीमतीजी की इस सादगी पर।

"मियाँ! कैसी मुहर्रमी सूरत बनाये हो? तुम्हारा तो मस्तिष्क प्लाटों का समुद्र है, फिर लिख लेना।" शुक्ल जी ने साँत्वना दी।

"हाँ, इनमें प्रतिभा और कला का पूर्ण सामञ्जस्य है। मैं तो इनको एक बार प्रकाश में ला देना चाहता था।" द्विवेदीजी ने अनुमोदन किया अपनी सम्पादकीय स्वाभाविक विशिष्टता से।

इन उत्तरी और दक्षिणी पोलों को एक मुँह देखकर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। एक लेखक के प्रति दूसरे लेखक का इतना अवहेलनापूर्ण व्यवहार? मेरा ब्रह्म उग्ररूप धारण करना चाहा, परन्तु फटे दूध पर चिल्लाना बेकार था।

मैंने आभार-प्रदर्शन किया "सेवकके प्रति यह आप लोगों की उच्च धारणा है। फिर भी जिस तरह शरीर के किसी यंत्र के विकृत हो जाने पर उसकी डाक्टरी मरम्मत भले ही करा ली जाय, परन्तु वह प्रकृत अवस्था में नहीं लाया जा सकता, ठीक उसी प्रकार कहानीकार का एक बार का स्वतः बना मूड समाप्त हो जाने पर ठोंक-पीटकर पुनः उस रूप में निर्मित नहीं किया जा सकता।"

"भाई परिहार, यह स्वयंसिद्ध है, परन्तु यह भी सत्य है कि अबला अन्धकारस्वरूप क्षम्य है। इस अनर्थ में अथ से इति तक अपराध मेरा ही रहा। अतः क्षमाप्रार्थी हूँ।" द्विवेदी-जी के अंतस्तल से बहिर्गत हुआ।

"आप इन शब्दों से मुझे नरक में ढकेल रहे हैं। यह मेरा परम सौभाग्य है कि आपकी श्रीमतीजी की अग्नि-परीक्षा में सफल होकर, उनके जलजांगों का कष्ट-निवारण करते, आप लोगों को मेरी कहानी चाय पिलाई।"

—०—

यमालय से मुक्ति

चाहे आप मानें या न मानें, अस्वस्थता पापों के दंड की नोटिस है। यदि इस नोटिस पर ही आप जगरूक हो गये, तब तो मामला तत्काल सुलझा, वरना उलझता ही जाता है। फिर तो आप महासंख्यानक चित्रगुप्त की, जो प्राणिमात्र के जन्म-जन्मान्तर का लेखा-जोखा रखते हैं, सम्मन-तलबी से बच नहीं पाते। यदि आपने सम्मन-वाहक ग्रहों को कुछ पूजा पाठ चढ़ाकर, टाल-मटोल करने की नीति अपनाई, तो परिणाम और भी भयंकर होता जाता है और आप पर महान्यायाधीश यमराज के न्यायालय से वारंट-गिरफ्तारी जारी होकर ही रहता है। तदनन्तर आप चाहें या न चाहें, कुर्की की नौबत आने के पहले नियति रूपी यमदूत द्वारा आप बरबस घसीटकर ले जाए जाते हैं, और बन्दीगृह में अनंत काल तक सड़ाये जाते हैं। वहाँ से प्रकृत रूप में विरले ही लौटते हैं। सुना है, किसी युग में सावित्री अपने पातिव्रत्य के पराक्रम से अपने पतिदेव सत्यवान को, यम का वरद्-हस्त प्राप्त कर, लौटा लाई थी। परन्तु यह युग भी ऐसे उदाहरण का अपवाद नहीं है। बधवा सुलक्षणा, अपने मातृत्व के बल पर, अपने एक पुत्र सुरेन्द्र को यमपाश से छुड़ाने में कैसे समर्थ हुई, सुनकर आप सहानुभूति ही नहीं प्रकट करेंगे, अपितु अपने हृदय-सागर से करुणा की दो बूँदें नयन-स्रोतों द्वारा ढुलकाए बिना न मानेंगे।

जब सुरेन्द्र को, देहात के मार-मारकर बननेवाले वैद्यों और हकीमों ने, जीर्ण ज्वर के साथ खाँसी की भी नोटिस दे दी, तो उसकी माँ को वज्राघात-सा लगा। सुरेन्द्र जब पाँच बरस का था, तभी उसके पिता, जो एक मध्यवर्गीय जमींदार थे, स्वर्गारोहण कर गये। विधवा माँ ने, अपनी इकलौती संतान के लाड़-प्यार में, पति की परम्परा अक्षुण्ण रखी, अपने ऊपर कष्टों का पहाड़ रखकर। यदि सुरेन्द्र का जरा सरदर्द करने लगता, तो वह मनौतियों, ओझों और दवाओं में देखते-देखते सैकड़ों का वारा-न्यारा कर देती। परन्तु अब एक ऐसे अवसर पर, जब उसका पुत्र दसवीं कक्षा तक पहुँच-कर शिक्षा-सरिता के एक किनारे लगा और शीघ्र ही उसका सहारा बनने जा रहा था, यह नोटिस उसपर उसी प्रकार बिजली-सी गिरी, जैसे भारतसे बुलगानिन का वक्तव्य गोवा के बारे में डलेस और कुन्हा पर। एकमात्र पुत्र होने के नाते, सुरेन्द्र के मनमाने व्यय की वर्षा से मित्रों क बाढ़-सी आ गई थी, जो सुलक्षणा के आर्थिक बाँध को तोड़-फोड़ डाली थी। ये सुरेन्द्र के उस स्कूल के साथी थे, जहाँ सद्गुणों से जेहाद की शिक्षा मुफ्त दी जाती है, और जिनकी संख्या मक्खियों और मच्छरों की भाँति गंदगी ही से बढ़ती है।

फिर भी माँ पुत्र की प्रसन्नता में ही अपना गम गलत करती थी उसके बहुसंख्यक हेरी-मूछियों के स्वागत में। परन्तु असमय में वे ऐसे ही सिद्ध हुए, जैसे बुलगानिन के वक्तव्य पर, भारत के लिए अमेरिका। ऐसी परिस्थिति और नोटिस पर, बीमार को सदर अस्पताल में हाजिर होने के दूसरा चारा नहीं रह गया। जब वह सुरेन्द्र को लेकर सिविल सर्जन के समक्ष उपस्थित हुई, तो डाक्टर ने इनको उसी प्रकार देखा, जैसे थानेदार पकड़े आसामी को। हास्पिटल में भर्ती कर उसे दो-

चार दिनों तक उन्होंने अपनी पेटेंट दुकान की दवाओं रूपी कसौटी पर कस लिया और अपने बंगले पर प्राइवेट कॉल रूपी अंगीठी पर भी रखकर परीक्षा कर ली, तो वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आसामी रूपी सोना पानीदार है। जैसे थानेदार हवालात में ठोक-पीटकर आसामी को तौलता है। फिर क्या था, सिविल सर्जन ने, मेडिकल विधान के अनुसार, एक मास तक पूरी जांच-पड़ताल करके हर प्रकार के नुस्खे आजमा लिए, तो केस को अपने अधिकार के बाहर पाया तद-नन्तर जैसे जोंक रक्त चूसकर, शरीर स्वयं छोड़ देती है, वैसे ही इन्होंने पूर्ण संतुष्ट होकर अन्तिम फैसला दे दिया कि किसी उच्च चिकित्सालय के प्रधान द्वारा ही इसका अंतिम निर्णय कराना होगा; यों तो उन्हें टी० बी० के द्वितीय स्टेज का सन्देह है। सुनकर सुलक्षणा को लगा जैसे आजीवन कारावास का दण्ड फांसी की सजा में परिवर्तित कर दिया गया। वह रीती-थाती पुत्र के साथ घर लौटी। बँधी मुट्ठी गई थी और पसारे हाथ आई। उसके पास अब रह ही क्या गया था? टिनेन्सी ऐक्ट में ऐसा विधान अवश्य था कि विधवा की जमींदारी अक्षुण्ण रहेगी, परन्तु अभाग्यवश इसके पुत्र जो था। वह खेत बेंच नहीं सकती थी। बागों को पेट-यज्ञ की पूर्णाहुति में झोंक चुकी थी। अब दो चार सोने के आभूषण उसके पास शेष रह गए थे, जिनकी परीक्षा का अवसर अब बाजार में उपस्थित हो गया, मासा-रत्ती करके रक्त चूसनेवाले सेठ की दूकान पर। फिर क्या था, इन गहनों का चौथाई मूल्य आँक-कर, इस परिवार से पुरानी मित्रता का दम भरते हुए, सेठ तोंदू-मल ने पांच सौ मात्र ही दिया और इस शुभ कार्य में पूर्ण हाथ बँटाया।

जब गांववाले सन्देहात्मक रोग को सिविल सर्जन के

फैसले के अनुसार वास्तविकता में होना सुने, तो वे सहानुभूति से कम बल्कि संक्रामकता के भय से अधिक, सुरेन्द्र को शीघ्र उच्चतम मेडिकल कालेज में ले जाने के निमित्त सुलक्षणा को ऊबा दिए। फिर तो ट्रेन और स्टीमर ने भी मां-बेटे को सुरसरि-तट स्थित उस नगर में ला उतारा, जहाँ उच्चतम शारीरिक वैज्ञानिक अनुसंधान-केन्द्र था। उसी समय, अनादि काल से, पाटलिपुत्र के उत्थान-पतन को देखे हुये भगवान् तिमिरनाशक, उसे पुनः उसी प्रकार देखने को आकाश में अवतीर्ण हुए, जैसे मोक्ष की प्राप्ति-निमित्त प्रयत्नशील जीव पुनर्जन्म धारण करता है। पहुंचते ही सुलक्षणा का दिल बैठने लगा इस महासमुद्र में, पतवार-हीन नाव पर आरूढ यात्री की भाँति या अगाध जलराशि के भयंकर जल-जन्तुओं के मध्य पहुंची गड्ढे की मछली की भाँति। रिक्शा पर आये, बिड़ला धर्मशाले के मैनेजर ने, जब मैली-कुचैली साड़ी पहने विधवा को, एक कुशित रोगी के साथ देखा, तो उसने उसी भाँति नाक-भौं सिकोड़ा, जैसे मकान-मालिक, कण्ट्रोल-काल के किरायेदार को। वहाँ वह अन्य यात्रियों से पाँच-पाँच रुपये अग्रिम लेकर भर्ती करते जा रहा था, परन्तु सुलक्षणा की प्रार्थना को उसी प्रकार अनसुनी कर दिया, जैसे नौकरी के इच्छुक, बेकार की सेवा-आयोग। फिर तो रिक्शेवाले ने उन्हें त्रिशंकु की भाँति, अधर में लटके रहने न देकर, गन्तव्यस्थान को पहुँचाकर दम लिया और दो रु० पारिश्रमिक का अधिकारी बना। जब दो दिनों तक मेडिकल कालेज के फाटक के समक्ष, सड़क की पटरी पर, मां-बेटे ने निष्फल बिताया, तो एक भुक्तभोगी रोगी की कृपा से, उनकी आउट डोर के मेडिकल आफिसर के कमरे तक तीसरे दिन पहुँच हुई। वहाँ बरामदे में कतारों में लगे बेन्चों पर दर्जनों रोगी बैठे थे और अपनी

पुकार की बारी जोह रहे थे। सुलक्षणा भी पुत्र के साथ फर्श पर, सबके अन्त में, बैठ गयी, जहाँ एक लावारिस बन्धु-विहीन दम तोड़ रहा था, परन्तु जानेवाले के साथ नाता जोड़ना, वहाँ उपस्थितों में से, जो कदाचित् ही नहीं निश्चित रूप से एक दिन उसी मार्ग का अनुसरण करनेवालों में से थे, कोई उचित नहीं समझ रहा था। साथ ही डाक्टर भी, जो ईश्वर से होड़ लगाए बैठे हैं, ऐसे यात्री को पार उतारने में सर्वदा सहायक सिद्ध होते हैं, क्योंकि उनका एहसान इसलिए कम नहीं होता कि उनसे फीस लिए बिना ही उन्हें जाने देते हैं।

दो दिनों तक डाक्टर के यहाँ पुकार नहीं हुई। बेचारा डाक्टर करे भी क्या? समय के अन्दर ही तो उसे मरीजों को देखना रहता है, दो-चार जो ही देख ले; क्योंकि उसे अपनी पूरी योग्यता लगाकर साइन्टिफिक तरीके से देखना रहता है ठीक उसी प्रकार, जैसे वर्तमानकाल में जुडिशियल या रेवेन्यू मजिस्ट्रेट के न्यायालयों में निर्धारित तारीखों पर पुकार का नाटक होकर मुकदमों का फैसला होता रहता है। जब रोगी मर गया, तो ईश्वर दोषी, जी गया, तो डाक्टर का यश। इस प्रकार डाक्टर के दोनों हाथ में लड्डू रहता है। सुलक्षणा को परेशान देख एक परोपकारी भुक्तभोगी ने उसको बताया कि प्रधान डाक्टर गुहा के घर पर दिखलाओ, तो काम बन जायगा। बेचारी विधवा सन्ध्या समय सुरेन्द्र को लेकर गई। वहाँ यमराज के न्यायालय का दृश्य उपस्थित था। कोढ़ियों रोगी, अपराधियों की भाँति हाथ बाँधे, बरामदे में उपस्थित थे और अपनी कराह एवं पीड़ा से वातावरण बीभत्स बना रहे थे, जो जीवन में दान देने को कौन कहे, दान का नाम तक न सुने थे, कदाचित् वे अनभिज्ञ थे कि यमराज के कार्यालय में प्रत्येक प्राणी के जन्म-जन्मान्तर का हिसाब रहता है, जिसे

कभी न कभी किसी न किसी रूप में अवश्य चुकाना पड़ता है। डाक्टर गुहा प्रधान न्यायाधीश की भाँति उच्चासन पर आसीन थे। टेबुल पर नाना प्रकार के आधुनिक मेडिकल यंत्र स्थित थे—जिन्हें, उनके सहायक जो वाम पार्श्व में स्थित थे, विद्युत् की भाँति उनका रुख देखते, रोगियोंके परीक्षण-निमित्त प्रस्तुत कर देते थे। बरामदे में कम्पाउन्डर, एक-एक रोगी को पुकार-कर, बीस रुपया शुल्क लेकर रजिस्टर में नामांकन कर रहा था और क्रमानुसार भेजता जाता था। लगभग आठ बजे रात्रि में सुरेन्द्र की बारी आई। डाक्टर गुहा ने छाती, पीठ, पेट भली भाँति ठोक-पीटकर, अपनी टेबुल पर सजे औजारों से नाक, कान, आँख, मुँह इत्यादि देखा। हृदय तथा नाड़ी की गति घड़ी से मिलाया। माता का हृदय पुत्र के इस सूक्ष्म परीक्षण पर संतोष को प्राप्त होता जा रहा था कि अब मेरे पुत्र की अंतिम मुक्ति शीघ्र ही हो जायगी। बेचारी को क्या मालूम कि बड़ों के कारनामे भी बड़े होते हैं। ठीक वैसे ही, जैसे बंगाल प्रांत में कंट्रोल-काल में तात्कालिक मुख्य मंत्री के किये गये अन्नसंचय ने भूतो न भविष्यति अकाल की सृष्टि करके तीस लाख अशरफुलमखलूकात को दोजख की आग बुझाने के लिये एँड़ियाँ रगड़वाकर रवाना कर दिया, जिनकी संख्या हिटलर द्वारा ठाने गये महायुद्ध के वीर-गति पानेवालों से भी अधिक थी। डाक्टर ने रोग का निदान करके अपनी राय एक फुलस्केप पेपर पर लिखकर दी, जिसका अर्द्ध भाग डाक्टर के हाउस तथा फोन-नम्बर, उनकी योग्यता तथा विशेषज्ञता की उपाधियों ने, जिन्हें इंगलैंड, वियना तथा अमेरिका के विश्व-विद्यालयों से प्राप्त किया था, घेर रखा था। उसमें अंकित था। (१) चेस्ट तथा स्टमक का अलग-अलग एक्स-रे, (२) यूरिन तथा ब्लड की परीक्षा, (३) स्टूल की जाँच अकल्ट ब्लड

के साथ। कुछ औषधों के नाम अंकित थे। प्रत्येक परीक्षा की रिपोर्ट दिखलाकर दूसरी कराई जाय।

जब सुलक्षणा अपने पुत्र का कर्म-विपाक लेकर दूसरे दरवाजे से लेकर जाने लगी, तो कम्पाउन्डर के हृदय में भयानक उथल-पुथल मची ठीक वैसे ही, जैसे पूर्णिमा को समुद्र में ज्वार-भाटा उठता है। उसने अपने सहायक को उसे पकड़ने को भेजा।

"कहाँ जा रही हो?" उसने पुकारा।

"जाती कहाँ, यहीं आ रही थी।"

"अनजान हो, इसलिये तुम्हारे इधर-उधर भटकने के कष्ट से बचाने के लिये सावधान किया।"

"आप लोगों की शरण में आकर बिना पूछे कैसे चली जाती।"

दूत ने पुर्जा लेकर कम्पाउन्डर को थमाया। उसने सुलक्षणा को पढ़कर पूरा विवरण बतला दिया।

"अब मैं कहाँ कहाँ दिखलाऊँगी?"

"कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं। दो-चार घरों के अंतर से सब स्थान मिल जायँगे।"

"फोटो कहाँ लिया जायगा?"

"गुहा ऐन्ड सन्स एक्स-रे होम में, जो बगलवाले हैं, उन्हीं के यहाँ।"

"मल-मूत्र की परीक्षा कहाँ होगी?"

"गुहा ऐन्ड ब्रदर्स टेस्टिंग लेबोरेटरी, जो उससे सटा है।"

"पेशाब और रक्त की?"

"गुहा ऐन्ड अंकिल्स क्लिनिक्स में, जो उसके बाद है।"

"औषधें?"

"गुहा केमिकल्स से, जो उससे लगी हुई बड़ी दुकान है।"

"अब तो काफी रात हो गई, कहीं ठहरने का ठिकाना है?"

"कहीं नहीं। हम लोगों को यहाँ जानता ही कौन है? दो दिनों से मेडिकल कालेज के फाटक के सामने सड़क पर रह रही हूँ।"

"तब कहीं जाने की जरूरत नहीं। इसी कोठरी में रहो। दो रुपये रोज किराये लगेंगे।"

सुलक्षणा को जैसे सहारा मिला। आभार-प्रदर्शन करते उसने कोठरी में सामान रक्खा।

× × × ×

दूसरे दिन से क्रमानुसार परीक्षा प्रारम्भ हुई। पहले बैरियम पिलाकर चेस्ट तथा स्टमक का एक्स-रे द्वारा, प्रत्येक का दो फोटो लिया गया, जिसका शुल्क चौंसठ रुपया देना पड़ा। डाक्टर गुहा ने प्रति बार बीस रुपये फीस लेकर पहले चेस्ट फिर पेट का फोटो देखा और प्रति बार खाने की दवाओं में परिवर्तन किया। क्रम से मल-मूत्र तथा रक्त की परीक्षायें कुल १४) फीस देकर तीन दिनों में पूर्ण हुईं। प्रत्येक रिपोर्ट निर्धारित फीस लेकर हरबार गुहा द्वारा देखी गयी और खाने की औषध में परिवर्तन किया गया। पाँचवें दिन, स्टमक की एसिडिटी की अंतिम जाँच के लिये डाक्टर ने लिखा, जिसकी पूर्णाहुति गुहा सिस्टर्स नर्सिंग हाउस में दस रुपये लेकर की गई। जिसकी रिपोर्ट डाक्टर ने अपनी भी निर्धारित फीसों में कमी न करके देखा और फैसला दिया, क्योंकि इन दस दिनों में, हाई-कोर्ट की मिसिल की भाँति, कोई कोर कसर न रह गई थी, जिससे न्याय पर पहुँचने में बाधा उपस्थित होती। परन्तु सुलक्षणा का धैर्य अपनी सीमा पार कर गया था, क्योंकि कोठरी के रेंट के साथ गुहा फ्रूट सेलर्स और गुहा डेयरी वर्क्स की बिलें बढ़ती जा रही थीं। साथ ही सुरेन्द्र की एक हल्की चोट, कम्पाउन्डर के संसर्ग में आकर, उसकी फीस द्वारा

उपर्युक्त भार को परिवर्द्धित करती जा रही थी।

माँ गिड़गिड़ाई, "डाक्टर बाबू, अब मेरे पास ....।"

"मैं जानता हूँ कुछ नहीं रह गया है—सचमुच तुम बहुत गरीब हो। अब तुम्हारा धेला खर्च नहीं होने दूंगा।"

"आप भगवान हैं। अब मेरे बच्चे की दवा कैसे हो पाएगी? रहने को मैं भूखो प्यासी सड़क पर भी रह सकती हूँ।"

"घबराओ नहीं; बीमारी बचत कराने के लिए नहीं, अपितु तन और मन की शुद्धि कराने आती है। अब सबका इन्तजाम बिना पैसे का हो जायगा। मैं ऐडमिशन कर लूंगा। दो महीने में रोगी रोगमुक्त हो जायगा।"

"यदि वहां भी लगे, तब?"

"नहीं लगेगा। सरकारी अस्पताल में असन, वसन, आवास और औषधें सब मुफ्त मिलती हैं।"

"वहां के डाक्टर और कम्पाउन्डर को?"

"कुछ नहीं देना पड़ेगा। लड़के को दो मास अवश्य रखना होगा। यही मेरा अंतिम फैसला है।"

सीधी, सत्यव्रता सुलक्षणा इस आदेश का अर्थ क्या जाने कि न्यायालय के फैसले के बाद, अपराधी की भांति दो मास सुरेन्द्र को बन्दीगृह सेवन करके मुक्ति होगी।

+ + + +

आगामी दिवस ने दस बजे सुरेन्द्र को अस्पताल के जनरल वार्ड में; जो जेल की बैरक की भाँति था, भर्ती पाया। परन्तु उसका लोहे का स्प्रिंगदार बेड खाली था। आध घन्टे तक माँ बेटे परेशान रहे, कोई पूछनेवाला नहीं था। एक रोगी को दया आई। उसने इशारा किया—देखो, वार्ड ब्वाय वहीं दरवाजे पर उधर मुंह किए खड़ा है, उसे एक रुपया इनाम दे दो, तो सब ठीक कर देगा। उसने यहीं तक न कहा, बल्कि उसे

पुकारकर बुला भी दिया। एक रुपया अपना हक पाते ही, उसने बिजली की तेजी से काम किया और बेड पर गद्दा, चादर, कम्बल, टिकट, सब लगा दिया। एक छोटा रेक भी लाकर रख दिया। अभी सुरेन्द्र लेटा ही था कि उसके गत जीवन की एक-एक भूलें उसके मन को अशांत करने लगीं, जिन-के कारण उसे आज यह दिन देखना पड़ रहा था और साथ ही उसकी मां को इतनी घोर तपस्या के साथ नारकीय यन्त्रणायें भोगनी पड़ रही थीं। उसे वे दिन भी याद आये, जब उसने अपने उच्छृङ्खल साथियों के साथ अनियन्त्रित होकर उद्दण्डता की थी और पन्द्रह दिनों तक उसे जेल में सड़ना पड़ा था। उच्च-तर न्यायालय में अपील करने पर ही जिससे उसकी मुक्ति हुई थी। ठीक वैसे ही सब बातें क्रम से चल रही हैं। प्रकृति के नियमों की अवहेलना करके असंयमित जीवन बिताकर वह वैद्यों और हकीमों के चंगुल में फँसा और उनकी नोटिस पर सिविलसर्जन के पंजे में दबोचा गया। अब प्रधान शरीरविज्ञानवेत्ता के गुहा नाम रूपी महाजाल में वह फँसा है, जिसके एक-एक बन्धन ने कस-कसकर उसके रग-रग का रक्त चूस लिया है। ओह, मेरी मां, जो घर से बाहर कभी पैर नहीं रखी, यहाँ दर-दर घूम रही है, ऋणग्रस्त होकर पैसे बहा रही है, मुझ नारकीय को उबारने के लिये। भगवान! दो महीने और जेल-यातना भुगतनी पड़ेगी, शरणागत हूँ—अबकी बचाओ, मां—मां को इतना कष्ट कभी न दूंगा। इतने में रोगियों के लिए, कुक द्वारा, दोपहरका भोजन लाया गया। इसने हंसते-हंसते पुराने रोगियों को, अजीर्ण का भय दर्शाते हुए, कम ही खिलाया। पास ही सोया एक रोगी टुकुर-टुकुर ताक रहा था। उसके बगलवाले रोगी की मध्यस्थता से दो रुपए इस अन्नदाता की पूजा चढ़ाने पर, उसे भी भोजन मिला। देखादेखी नए भरती

हुए, बीस रोगियों ने पूजा चढ़ाकर ही प्रसाद पाया। तदनन्तर बची थालियाँ लेकर वह जाने लगा। सुरेन्द्र को ओर उस फूटी आँखों भी नहीं देखा। सुलक्षणा ने उसकी ओर दौड़कर उसका पैर पकड़ लिया।

"क्यों, क्या चाहिए ?"

"खाना, मेरे बच्चे के लिए भी।"

"लक्ष्मी-पात्रों को ही बरबस सब देते हैं, गरीबों की ओर कोई ताकता तक नहीं।"

"मैं नहीं समझा।"

"आप कम से कम पाँच बार बड़े साहब को बिना माँगे फीस दी होंगी, जो दो हजार तनख्वाह पाते हैं, परन्तु मुझे दो रुपये मेरा हक देने के लिए मेरा पैर पकड़ रही हैं।"

"आप ब्राह्मण हैं, यह जानकर ही मैंने ऐसा किया।" उत्तर देते सुलक्षणा ने एक रुपया दिया।

"इससे काम नहीं होने का ? जैसे मुझे भीख दे रही हो ?"

"क्या, आधी मुआफी की भी गुंजाइश नहीं ?"

"अच्छा, जैसी करनी वैसी भरनी।" अन्नदाता ने ऐसे अवसरों के लिए रखी एक विशेष थाल निकाली, जिसमें जले हुए भोज्य पदार्थ तथा सड़े-गले फल रखे थे, जिसमें से जली गंध निकलकर फैल गई।

देखते ही माँ का हृदय जल गया। किसी जमाने में उसका कुत्ता भी ऐसा खाना नहीं सूँघता था। उसने दूसरा रुपया निकालकर ब्राह्मण देवता के पाकेटस्थ किया, जिसके साथ ही जादू की भाँति थाल भी बदल गई, ठीक उसी भाँति, जैसे वजन देनेवाली मशीन में इच्छित सिक्का डालते ही वजन का टिकट निकल आता है।

सुरेन्द्र ने भोजन किया। तदोपरान्त उसे प्रकृति के प्रथम वेग लघुशंका की इच्छा हुई। बेड छोड़कर बाहर जाना निषेध था। वार्ड की नर्स वहाँ से उसी प्रकार गायब थी, जैसे कक्षा से उच्छृंखल विद्यार्थी या कार्यालय से प्रभावशाली और दुलरुआ कर्मचारी। उनको कहाँ अस्पताल में रहना चाहिए। वे रहती ही हैं या तो किसी मेडिकल कालेज के विद्यार्थी के साथ मानव-मनोविज्ञान का अध्ययन करती हुई या डाक्टर के साथ शरीर-विज्ञान का प्रैक्टिकल एक्सपेरिमेंट करती हुई। न रहने से उनके वेतन में कमी तो होती नहीं। इस समाजवाद-विशेष के सब सदस्य मौसेरे भाई-बहन थे। बड़ी दौड़-धूप के बाद, मेहतर, जो नये-नये रोगियों से अपना टैक्स वसूल करने गया था, आया और एक रुपया यहाँ से भी वसूल करके यूरिन-पाट दिया। सुलक्षणा ने उससे कुछ कहना-सुनना कमठ-पीठ पर बाल उगाने की ही भाँति बेकार समझा, क्योंकि उसने देख लिया था कि चिल्लाते-छटपटाते दो रोगियों ने प्रकृति के वेगों का शमन बेड पर ही कर दिया, परन्तु पाट और बेडपैन उनको नहीं ही मिले। कौन पूछे ? क्यों पूछे ? सब एक ही घाट के पानी पीनेवाले थे। इन रोज-रोज के मरनेवालों के लिए कोई अपना आराम क्यों छोड़े। सुरेन्द्र दो घण्टे मुश्किल से आराम कर पाया होगा कि कम्पाउंडर ड्रेसिंग करने आया। उसने हँसते-हँसते घाव की बँधी पट्टी को इस दक्षता से झटके के साथ उभाड़ा कि घाव से सटी हुई बैंडेज और भरी हुई रुई और गाज के साथ चमड़ा भी नुच गया, वैसे ही, जैसे महावीरजी संजीवनी बूटी न पाने पर धवलागिरि पहाड़ जड़ से उखाड़ लिए थे।

"अरे, मरा रे!" कहते सुरेन्द्र ने करुणक्रन्दन किया। सिसकियाँ भरते सुलक्षणा की आँखें, शरद ऋतु में भी सावन-भादों बरसाने लगीं। उसने कम्पाउन्डर का हाथ पकड़ लिया; और एक रुपया देते अनुनय-विनय किया—

"बाबू, अपना बच्चा समझकर ही, इसकी मरहम-पट्टी कीजिए।"

"यदि आप इस प्रकार अड़ंगा डालेंगी, तो हमारे वक्त का नुकसान करके सरकार के प्रति मेरे कर्तव्य पर कुठाराघात करेंगी?" कम्पाउंडर ने आँखें तरेरते और रुखाई से हाथ खींचते कहा, और खराब हुए हाथ की उँगलियों से उसने घाव के मुँह को इस ढंग से साफ किया, जैसे चाकू से खीरे का सर उड़ाया जाता है। पुनः उस पर रूतिया रगड़कर गाज तथा आइडो-फार्म भरना उसी प्रकार शुरू किया जैसे खीरे में नमक। पीड़ा से सुरेन्द्र कराह उठा। मानो जन्म-जन्मान्तर के पापों के प्रायश्चित्त-स्वरूप रौरव नरक की यंत्रणा भुगत रहा है।

पैसे के निमित्त मानव मानव के प्रति इतना क्रूर! माँ ने चार रुपए रखते उसका पैर पकड़ लिया। फिर तो कम्पाउंडर के हाथों में मक्खन लग गया और उसमें वह कोमलता आई कि छूते ही अभिशाप के बदले आशीर्वाद बन गई। सुरेन्द्र को तुरन्त नींद आ गई। कहना न होगा, शाम का शौच निमित्त उसी मेस्तर द्वारा दो रुपए पर बेडपैन भी मिला।

सबेरे व शाम को डाक्टर राउण्ड करने आया। उस समय वार्ड के सब कर्मचारी उसी भाँति टपक पड़े, जैसे हवा के झोंके से पके आम। उसने अपना थर्मामीटर लगाकर सुरेन्द्र का ताप देखा, जो रोगी को नहीं होते हुए भी १०१ डिग्री बतलाया।

सुलक्षणा ने गलती से गुप्त का पर्चा उनके सामने प्रस्तुत

कर दिया। उसको देखकर उनपर वही असर हुआ, जो मिनिस्टर की सिफारिश का विभागीय पदाधिकारी पर। उसने उसे लौटाते हुए अस्पताल का पुर्जा लिखा और वाम पार्श्व में स्थित नर्स को थमा दिया। तदनन्तर अन्य रोगियों को देखते चलता बना। डाक्टर के जाते ही सुलक्षणा ने नर्स से पूछा,

"साहब ने क्या लिखा है ?"

"हालत खराब है।"

"कैसे सुधरेगी ?"

"दूसरी दवा देनी होगी।"

"कहाँ से मिलेगी ?"

"कुछ यहाँ से, कुछ बाहर से।"

"यहाँ वाली तो मंगवा दीजिए।"

"स्टाक में नहीं है।"

"क्या हुई ?"

"कुछ भी हो, तुम पूछनेवाली कौन हो ?"

वारि से घृत निकालने की भाँति बहस को समझकर उसने दो रुपया बढ़ाया, जिसे फेंकते और चिल्लाते वह आगे बढ़ी —

"क्या मुंह-दिखाई दे रही हो ? पाँच रुपए तो बँधी रकम है। इसमें भी मीन-मेष ? जो बात न मालूम हो, उसे दूसरों से पूछकर, भली भाँति करनी चाहिए।"

फिर तीन रुपए लेकर उसने पिण्ड छोड़ा और दवा मंगवा दी। बाजारू दवा के लिए उसने कह दिया कि जिस दुकान से वह पहले लेती थी, वहीं मिलेगी।

"मैं किससे मंगवाऊँ ?" सुलक्षणा ने टोका।

"इसकी कीमत पाँच रुपया है, यदि दे दो, तो मैं मंगवा दूँ।"

उसके पास केवल पाँच रुपए रह गए थे, जिसे उसने नर्स के हवाले कर दिया।

नर्स के जाते ही, वार्ड के एक पुराने रोगी ने इशारा किया, "माताजी, सरकारी अस्पताल की दवायें डाक्टरों की दूकानों, उनके दोस्तों और उच्चाधिकारियों के निमित्त ही बनी हैं, किसी अन्य के लिये उसी भाँति हैं, जैसे उड़ा सत्त, पितरों के लिए।"

आज प्रथम दिन था सुरेन्द्र के आगमन का, अतः बनिए, वेश्या या वकील की भाँति, जो बिना पैसे के ग्राहकों से बात-चीत भी नहीं करते, उसी तरह उससे बिना बोहनी कराए किसी ने कोई कार्य प्रारम्भ न किया या प्रारम्भिक पाठशाला के उस शिक्षक की भाँति, जो स्कूल के खुलने पर प्रत्येक विद्यार्थी से बिना शुरू कराई लिये पढ़ाई प्रारम्भ नहीं करता। यह देखने या सुनने में नहीं आया कि आफिस की भाँति दिन-भर की ऊपरी कमाई इकट्ठा करके यथायोग्य बाँटी जाती है या मच्छरों की भाँति भुनभुनाकर सोनेवालों से जो जितना चाहे खून पी लेता है।

अब सुलक्षणा को पैसों ने जवाब दे दिया। उसने गाँव पर सुरेन्द्र के चचा को पत्र लिखा, और दूसरा उसके ननिहाल में नानी के यहाँ भी। गाँव से चचा ने उत्तर तक न दिया। तीसरे दिन सुलक्षणा की माँ ने रो-धो करके सुरेन्द्र के मामा के हाथ पाँच सौ रुपए भेजा। मामा श्रीकांत ने अपनी माँ के रुपए का अपने नाम सरखत लिखवाकर, भाई-बहन का नाता दृढ़ करके, इस विपत्ति में पूर्ण हाथ बँटाया।

इस प्रकार दिन-पर-दिन लुढ़कने लगे। इन अस्पताल-रूपी पुरानी मशीनरी के कर्मचारी रूपी पुर्जों को हर दूसरे - तीसरे आयलिंग किये बिना, सुचारु रूप से काम नहीं होता था।

इसके मेडिसिन स्टोर की दवाइयों का गुट्ठा केमिकल्स से जीव और संसार की भाँति आवागमन का सम्बन्ध था, जिसका मोक्ष रोगियों से एकात्म प्राप्त करके ही होता था। जिसका निमित्त डाक्टर का न्याय-दंड, थर्मामीटर ही था, जो धर्मराज की भाँति १०१ अंश ताप सब रोगियों को बतलाकर एक आँख से सबको देखनेवाली कहावत चरितार्थ करता था। कदाचित् वह भी गुट्ठा केमिकल्स के गर्भ से ही प्रसूत था। अतः सरकार के प्रति सत्यनिष्ठ उसके डाक्टर या जनता के प्रति उनके जन सेवक की भाँति गुट्ठा के प्रति वह भी अपनी सत्यनिष्ठा अक्षुण्ण रखता था।

देखते-देखते दिन सप्ताह में और सप्ताह मास में परिवर्तित होते लगभग दो महीने बीतने को आए। अँधेरे में तीर मारने की भाँति लक्ष्य को न भेदकर जैसे तीर चारों ओर लगकर स्थान बनाये खड़े रहते हैं, उसी प्रकार सुरेन्द्र पर आजमाई औषध रूपी सुइयों ने अपना स्थान बनाकर, एक नया रूप धारण कर लिया। काँटे को निकालने वाला काँटा टूटकर उसके अन्दर रह गया। विष को मारने वाला विष न पड़कर, अन्य पड़ा और एक भयानक रूप धारण कर लिया। द्वितीय मास के अन्तिम सप्ताह के चौथे दिन आधी रात से उसकी हालत नाजुक होनी शुरू हुई। पसीने से वह सराबोर हो गया। नाड़ी जवाब देने लगी। होश गायब होने लगा। हाथ-पैर ठण्डे होने लगे। जैसे श्मशान-रक्षक हरिश्चन्द्र, शैव्या से भी बिना कर लगाए, मुर्दे लड़के को भी जलाने के निमित्त आग देने के लिए नहीं सुने, उसी प्रकार चिकित्सालय नहीं, यमालय के कर्मचारियों ने भी, इस स्थान के प्रति अपनी कर्तव्यपरायणता चरितार्थ की। जब वार्ड के कर्मचारियों पर, जो सुरेन्द्र को जानेवाला समझ कर नाता जोड़ना अनुचित समझ

रहे थे, सुलक्षणा के अनुनय-विनय का प्रभाव, सिकता से स्नेह पाने की भाँति, प्रभाव-रहित रहा, तो वह धर्मराज रूपी डाक्टर गुहा के पास न्याय-निमित्त पूछते-पूछते पुनः पहुँची।

"डाक्टर साहब, अब मेरा लाल जा रहा है।"

"क्या, अच्छा हो गया?"

"नहीं, मुझे छोड़कर!"

"क्या अस्पताल में कोई तकलीफ है? उसे मनाती क्यों नहीं? आजकल के लड़के बड़े शैतान होते हैं।"

"नहीं, उसकी हालत खराब है। जल्दी चलिये, देख लीजिये।"

"मुझे फुरसत नहीं है। अभी एक इमर्जेन्ट आपरेशन करना है।"

सुलक्षणा ने एक नम्बरी उनके चरणों पर रखते कहा,

"आप ही मेरे भगवान् हैं। अब मेरे एकमात्र सहारे को बचाइये, केवल यही है।"

"अच्छा, चलो।"

नोट को जेब के हवाले करते वह साथ चल दिये। गुहा के आते ही, डाक्टरों तथा सहायकों की जमघट लग गई। वहाँ आने पर गुहा ने देखा, सुरेन्द्र अत्यन्त कमजोर हो गया है। उन्होंने डाँटकर कहा,

"मैं हर रोगी के पीछे-पीछे नहीं रह सकता। साधारण-सी बात को इतना भयंकर बना दिया गया। इसे अभी स्टीम-बाथ दो।"

स्वचालित यंत्र की भाँति बाथ के सकल उपादान प्रस्तुत हो गये। पन्द्रह मिनट के स्टीम-बाथ ने उसे ठीक कर दिया वार्ड के दरवाजे से बाहर निकलते प्रधान ने मेडिकल आफिसर

से पूछा, "इसको रहते कितने दिन हो गये ?"

"लगभग दो मास।"

"बड़ा सीरियस केस था। अपनी माँ के पुण्य प्रताप से बच गया।"

"जी हाँ, आपके आशीर्वाद से बचा।"

"परसों इनकी छुट्टी कर दी जाय, क्योंकि बहुत-से मरीज नाकों दम कर दिये हैं।"

'जो आज्ञा।"

"कितनी बेड्स खाली हैं ?"

"इसके साथ बीस रोगी भरती हुये थे, दस मर गए; वे तत्काल भर गईं। पाँच डरकर भग गये। नए उनपर भी आ गये। उनमें पाँच की दशा चिन्तनीय है, जिनमें से एक अभी आपकी कृपा से बचा है। परसों प्रातः ही यह तो एक अवश्य खाली हो जायगी। सम्भव है, आज शाम या कल तक बाकी चार भी हो जायँ।"

"अच्छा" कहते प्रधानाचार्य आगे बढ़ गये। पुनः कुछ दूर जाकर ठिठकते उन्होंने कहा, "इनके जिम्मे किसी प्रकार का बकाया न रहना चाहिए।"

\+ \+ \+ \+

दूसरे दिन सुबह से शाम तक कर्मचारियों की विदाई का मतलब निकल जाने के बाद तीसरे दिन प्रातःकाल ही वार्ड के सेवकों द्वारा सुलक्षणा तथा सुरेन्द्र का सामान वार्ड के बाहर फेंक दिया गया। उनको इतनी सहूलियत न दी गई कि वे उन्हें स्वयं या दूसरों से हटवा सकें, क्योंकि नये मेहमान आनेवाले जो थे। तृप्ति के पश्चात् जोंक स्वयं छोड़ देती है। स्वार्थमय प्रेम का अंतिम रूप घृणा है।

चलते समय वार्ड-ब्वाय आया। उसने कहा, "माताजी,

कुछ चिह्न देते जाइए।" पुराना ओढ़ना-बिछौना देकर सुरेन्द्र ने उसे विदा किया। तदनन्तर कम्पाउन्डर ने आकर कहा,

"बाबूजी, बची दवाइयाँ आप लोगों के काम नहीं आएँगी। यदि मिल जातीं, तो....."

"गरीब रोगियों को दे देना।" कहते पचासों फाइल्स सुरेन्द्र ने उसके हवाले कर दिया, जिनकी एकाध गोलियाँ या डोज ही उसने खाया था। चिकित्सालय से पैर बाहर रखते ही सुरेन्द्र ने कहा, "माँ! अब मैं कभी भी बीमार नहीं पड़ूँगा। तुम्हारे अत्यधिक छोह के अजीर्ण ने ही मुझे अस्वस्थ कर दिया था। मेरे दुष्कर्म के निमित्त किये गये तुम्हारे प्रायश्चित ने मुझे केवल कुसंगति से ही मुक्त नहीं किया, अपितु मेरी यमालय से भी मुक्ति दिलाई!"।